इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

एम एच डी-17
भारत की चिंतन परंपराएँ
और दलित साहित्य

सिद्ध और नाथ परंपरा

3

"शिक्षा मानव को बन्धनों से मुक्त करती है और आज के युग में तो यह लोकतंत्र की भावना का आधार भी है। जन्म तथा अन्य कारणों से उत्पन्न जाति एवं वर्गगत विषमताओं को दूर करते हुए मनुष्य को इन सबसे ऊपर उठाती है।"

— इन्दिरा गांधी

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

"Education is a liberating force, and in our age it is also a democratising force, cutting across the barriers of caste and class, smoothing out inequalities imposed by birth and other circumstances."

– Indira Gandhi

इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

एम एच डी - 17
भारत की चिंतन परंपराएँ और दलित साहित्य

खंड

3

सिद्ध और नाथ परंपरा

इकाई 7
सरहपा तथा चौरासी सिद्ध 5

इकाई 8
महानुभाव पंथ 20

इकाई 9
वीरशैव पंथ 32

इकाई 10
नाथ पंथ 46

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. ओम अवस्थी
गुरु नानक देव
विश्वविद्यालय, अमृतसर

प्रो. गोपाल राय (सेवानिवृत्त)
सी–3, कावेरी,
इग्नू आवासीय परिसर, मैदान गढ़ी
नई दिल्ली

प्रो. नामवर सिंह (सेवानिवृत्त)
32–ए, शिवालिक अपार्टमेंट
अलकनंदा, नई दिल्ली

प्रो. नित्यानंद तिवारी (सेवानिवृत्त)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. निर्मला जैन (सेवानिवृत्त)
ए–21/71, कुतुब एन्क्लेव
फेज–I, गुड़गांव, हरियाणा

प्रो. प्रेम शंकर (सेवानिवृत्त)
बी–16, सागर विश्वविद्यालय
परिसर, सागर

प्रो. मुजीब रिज़वी (सेवानिवृत्त)
220, जाकिर नगर
नई दिल्ली

प्रो. मैनेजर पाण्डेय (सेवानिवृत्त)
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. रामस्वरूप चतुर्वेदी
3, बैंक रोड, इलाहाबाद

प्रो. लल्लन राय (सेवानिवृत्त)
3, प्रीत विला, समर हिल, शिमला

स्व. प्रो. शिवकुमार मिश्र
गुजरात

स्व. शिव प्रसाद सिंह
वाराणसी

प्रो. सूरजभान सिंह
आई–127, नारायणा विहार
नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण

पाठ लेखक	इकाई संख्या	पाठ्यक्रम संयोजक एवं संपादक
डॉ. बजरंग बिहारी तिवारी देशबंधु कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय नई दिल्ली	7	**प्रो. विमल थोरात** मानविकी विद्यापीठ इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली
प्रो. विमल थोरात, मानविकी विद्यापीठ इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय नई दिल्ली	8	
डॉ. तेजस्वी कट्टीमनी मौलाना आजाद नैशनल उर्दू विश्वविद्यालय हैदराबाद, आंध्र प्रदेश	9	
कंवल भारती सी–260/6, आवास विकास कालोनी, गंगापुर रोड, रामपुर, उ. प्र.-244901	10	

आवरण चित्रकार
सवी सावरकर
नई दिल्ली

सचिवालयी सहयोग
मिथिलेश प्रसाद
मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

मुद्रण निर्माण

सी. एन. पांण्डेय
अनुभाग अधिकारी
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

फरवरी, 2014

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2014

ISBN-978-81-266-6666-9

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफ (मुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के बारे में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110 068 से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से प्रो. सुनैना कुमार, निदेशक (मानविकी विद्यापीठ) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : राजश्री कम्प्यूटर्स, वी–166ए, भगवती विहार, (नजदीक सेक्टर 2 द्वारका), उत्तम नगर, नई दिल्ली–110059

मुद्रित–मैसर्स आकाशदीप प्रिंटर्स, 20 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002

खंड 3 सिद्ध और नाथ परंपरा

खंड परिचय

एम.एच.डी. 17 – 'भारत की चिंतन परंपराएँ और दलित साहित्य' इस पाठयक्रम के 'बुद्धकालीन साहित्य परंपरा' और 'लोकायत परंपरा' खंडों के अध्ययन के बाद प्रस्तुत खंड 'सिद्ध और नाथ परंपरा' पर केंद्रित है। इस खंड का विस्तार से अध्ययन करने के बाद आप स्वयं ही भारतीय चिंतन परंपराओं के बीच के दार्शनिक सूत्र को रेखांकित कर सकेंगे। प्रस्तुत खंड में कुल चार इकाईयाँ है :

इकाई 7 – सरहपा तथा चौरासी सिद्ध

इकाई 8 – महानुभाव पंथ

इकाई 9 – वीरशैव पंथ

इकाई 10 – नाथ पंथ

'बुद्धकालीन साहित्य परंपरा' खंड–1 तथा 'लोकायत परंपरा' खंड–2 के अध्ययन से आपने जाना कि बौद्ध दर्शन तथा लोकायत दर्शन का उद्‌भव वैदिक ब्राह्मणवादी परंपरा के विरोध में एक प्रतिरोध की संस्कृति के रूप में हुआ और जिसने भारतीय भूमि पर समतावादी परंपरा की नींव डाली। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के कुटिलता स्वरूप अस्तित्व में आई जातिप्रथा को इन दोनों ही लोकधर्मी परंपराओं ने सशक्त चुनौती दी है। बौद्धमत कई शताब्दियों तक ब्राह्मणवाद का विरोध करता रहा। लोकायत परंपरा भी इसी बौद्धमत दर्शन की अगली कड़ी के रूप में जनता को वर्तमान में सुखपूर्वक जीने की चाह रखने से ही जीवन सफल हो सकेगा, इसका मर्म को समझाने का प्रयास करती हैं। लोकायतों की परंपरा को ही चार्वाक परंपरा के नाम से जाना जाता है।

लोकायत/चार्वाकों ने किसी अलौकिक शक्ति के होने की संभावना से इंकार किया है अर्थात् ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगाया है। बौद्धमत की राह पर चलते हुए चार्वाकों ने भी यथार्थ को ही सत्य माना है। प्रत्यक्ष को ही प्रमाण माना है, अनुमान अर्थात् ग्रन्थ के प्रमाण पर वे विश्वास नहीं करते बल्कि वर्तमान जीवन में प्राप्त जीवन का उपभोग करके सुख प्राप्त करने में विश्वास करते हैं। इसी की अगली कड़ी के रूप में हम सिद्ध–नाथ–परम्परा को देखेंगे।

प्रस्तुत खंड की प्रथम इकाई 'सरहपा तथा चौरासी सिद्ध' पर केंद्रित हैं। बौद्धमत आठवीं शताब्दी के बाद कई शाखा–उपशाखाओं में बँटा। उसकी तांत्रिक शाखाएँ मंत्रयान, वज्रयान और सहजयान के नाम से जानी जाती है। सिद्ध और नाथ परंपरा के साधक सहजयान के मतावलंबी रहे हैं। सिद्ध–संप्रदाय के कुछ अपभ्रंश में लिखे दोहे और चर्यापदों की खोज राहुल सांकृत्यायन को नेपाल यात्रा (1907) के दौरान प्राप्त हुए। सिद्धों की संख्या 84 निर्धारित की गई थी ये समाज के निम्न तबके के सिद्ध पुरुष थे। उन्होंने जातिप्रथा का विरोध करके सिद्ध तथा नाथ परंपरा में निम्न और कथित उच्च जाति के सिद्धों को एक ही कोटि में रखकर समता स्थापित करने का प्रयास किया। सिद्ध सरहपा इस संप्रदाय के संस्थापक थे, उन्होंने बौद्ध जीवनचर्या में अनुचित लगने वाले तत्वों का विरोध किया। ब्राह्मणवाद द्वारा निर्मित जाति प्रथाओं जैसी अमानवीय प्रथाओं पर कठोर से कठोर प्रहार किए हैं। उन्होंने वैदिक धर्मशास्त्र और उसके पाखंड को अमान्य करके उन संकीर्ण धारणाओं का खंडन करके जनसामान्य को ब्राह्मणवाद के आतंक से छुटकारा दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और इसमें कुछ हद तक उन्हें सफलता भी हासिल हुई। चौरासी सिद्धों की सूची को गौर से देखने पर हमें पता चलता है कि उनमें बहुत से सिद्ध शूद्र–अतिशूद्र जातियों से हैं। हिंदू तंत्र संप्रदायों की अपेक्षा चौरासी सिद्ध बौद्धों से अधिक निकटता रखते हैं और इसलिए वे समानतावादी थे। सिद्धों के कुछ नाम इस

प्रकार है– चमारिपा (चर्मकार), खड्गपा शूद्र, मगध, शीलपा शूद्र, कम्परिपा लोहार, सालिपुत्र आदि। (संदर्भ ग्रंथ–हजारी प्रसाद द्विवेदी– नाथ संप्रदाय, पृ. 44–47) उपरोक्त जातिसूचक निर्देशों से हमें ज्ञात होता है कि ज्ञान तथा भक्ति के क्षेत्र में जातिप्रथा को तोड़ने का प्रयास सफलतापूर्वक सिद्धों–नाथों द्वारा किया गया था। सामाजिक पहचान को इन सिद्धों ने नकार दिया था, वे मात्र साधक के रूप में पहचाने जाते थे। इस तथ्य के आधार पर हम कह सकते हैं कि सिद्धों के समय में अवजातीकरण की प्रक्रिया तेज गति से हो चुकी थी। सिद्ध परंपरा में स्त्री–साधिकाओं का प्रवेश वर्जीत नहीं था। मेखलापा, कनखलापा जैसी साधिकाओं का सिद्धों की सूची में शामिल होना, इस बात की पुष्टि करता है कि गौतम बुद्ध द्वारा भिक्षुणी संघ में स्त्रीवर्ग को जोड़ने के प्रगतिशील कदम का सिद्धों द्वारा अनुसरण किया गया।

सरहपाद शास्त्रवाद और ब्राह्मण–चिंतन की कठोर आलोचना करते हुए कहते हैं 'बहुसात्तात्थ मरूत्थलेहिं, तिसिअ मरिब्बोत्तेहिं' (दोहाकोश, 44)

वे सहज जीवन अर्थात् सहजवाद के पहले आचार्य थे, अत्यधिक त्याग और आसक्ति के बीच का रास्ता अर्थात् बुद्ध के मध्यममार्ग को अपनाने की बात कहते हैं। श्रमकों के प्रति उनके मन में सम्मान की भावना थी, इसीलिए हिंदू, जैन और बौद्ध साधुओं की मात्र साधना जीवन चर्या के प्रति उनका दृष्टिकोण आलोचनात्मक है। परवर्ती संत परंपरा पर सिद्ध परंपरा का गहरा प्रभाव पड़ा।

प्रस्तुत खंड की इकाई–8 'महानुभाव पंथ' के उद्भव एवं विकास और महानुभाव पंथ के दर्शन पर आधारित है। बारहवीं शती में महाराष्ट्र में चक्रधरस्वामी ने महानुभाव संप्रदाय की स्थापना की थी। महानुभाव पंथ ईश्वर, धर्म, पोथी और वर्णव्यवस्था का घोर विरोधी था। जातिप्रथा के विरोध में एक सिलसिलेवार मुहिम चक्रधर स्वामी ने चलाई और स्त्री को ज्ञान की परंपरा से जोड़कर उन्हें सम्मान तथा समानता का अधिकारी बताते हुए पंथ की अनुयायी/साधिका बनाने को प्रोत्साहित किया। उनके पाँच सौ शिष्यगणों में लगभग तेरह महिला साधिकाएं थी। 'लीलाचरित्र' नामक ग्रंथ चक्रधर स्वामी की लीलाओं अर्थात् यादों का संग्रह है। इस ग्रंथ के माध्यम से चक्रधर के दैनंदिनी के प्रस्तुतीकरण के साथ–साथ उनके परिवर्तनशील विचारों को प्रस्तुत किया गया है। महानुभाव पंथ ने संस्कृत के स्थान पर मराठी जो आम जनसमुह की भाषा थी, को अपनाकर सहज, सरल भाषा में विचारों का प्रवर्तन किया। महानुभाव पंथ ने बुद्ध चिंतन परंपरा, लोकायत परंपरा तथा सिद्धों की परंपरा के दर्शन को प्रेषित करने का सफल प्रयास किया। ब्राह्मणवाद की परंपरा, धार्मिक कर्मकांड तथा जाति भेदभाव को इस पंथ के संस्थापक चक्रधर ने कड़ाई से दूर रखा। जन सामान्य की आकांक्षा–आशा, दुख–दर्द और संघर्ष से सीधे जुड़ने के लोकधर्मी प्रयास महानुभाव पंथ की विशेषता रही है।

इस खंड की इकाई–9 'वीरशैव पंथ' के दर्शन पर आधारित है। इसमें बारहवीं शताब्दी में कर्नाटक प्रदेश में प्रचलित 'वीरशैव पंथ' के सिद्धांतों ने जो बदलाव जनमानस में लाया, उसका अध्ययन करना है। इस पंथ के प्रमुख प्रचारक बसवेश्वर ने सनातनी परंपरा के प्रतिपक्ष में समानता के विचार रखे थे। सामाजिक चेतना और स्त्री–मुक्ति के संदर्भ में वीर–शैव पंथ का योगदान उल्लेखनीय रहा है।

प्रस्तुत खंड की अंतिम इकाई–10 'नाथ पंथ' पर आधारित है। नाथ पंथ भी मानव जीवन में सरसता समन्वय लाने तथा जन–जन के बीच प्रेम, सहिष्णुता, भ्रात भाव पैदा करने की सोच पैदा करता है। यह आम आदमी को केन्द्र में रखकर उसके दुख–दर्द और संघर्ष को सृजन का आधार बनाकर समत्व की नयी भूमि तैयार करने में सफलता हासिल करने की कोशिश करता है। कबीर, रैदास, बसवेश्वर, चक्रधर, नामदेव, चोखामेला आदि संतों ने बुद्ध, चार्वाक, सिद्धों की परंपरा को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। अतः इस खंड के अध्ययन के पश्चात आप भारत की चिंतन परंपरा के द्वारा प्रसारित–प्रचारित अत्यंत प्रगत विचारों से परिचित हो सकेंगे।

इकाई 7 सरहपा तथा चौरासी सिद्ध

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 सिद्ध संप्रदाय : ऐतिहासिक परिवेश

7.3 चौरासी सिद्ध : सामाजिक आधार

7.4 अवजातीकरण की परंपरा का आरंभ

7.5 सिद्ध साहित्य में व्यक्त सामाजिक चेतना

7.6 जीवन-कर्म और आध्यात्मिक-साधना के बीच एकता का प्रतिपादन

7.7 करुणा पर विशेष बल

7.8 सिद्ध साहित्य में स्त्री और शूद्र

7.9 सिद्ध परंपरा की सीमाएं

7.10 सारांश

7.0 उद्देश्य

हम जानते हैं कि समकालीन दलित चिंतन की परंपरा सुदूर अतीत से प्रारंभ होती है। इस प्रकार, इस चिंतन की नींव पर्याप्त पुख्ता है। ब्राह्मणवाद और शास्त्रवाद का इतिहास जितना पुराना है उतना ही पुराना इतिहास उसके प्रतिरोध का भी है। अतीत में हुए संगठित प्रतिरोधों की जानकारी रखना, उनकी उपलब्धियों से सीखना और विफलताओं से सबक लेना दलित विमर्श के लिए स्वाभाविक है और भावी प्रतिरोध के रूपाकार की रचना के लिए उपयोगी भी। यह ध्यान दिलाने की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए कि दुनिया की तमाम वर्चस्वशाली सत्ताओं की तरह हमारे देश की ब्राह्मणवादी सत्ता ने भी अपने विरोध में उठने वाली आवाजों को भरसक दबाने की कोशिश की है। जिस आंदोलन ने वर्णव्यवस्था को सर्वाधिक सशक्त चुनौती दी और जिससे मुकाबला करने के लिए इसे अपनी पूरी ऊर्जा लगानी पड़ी वह बौद्ध मत का आंदोलन था। बौद्धमत कई शताब्दियों तक ब्राह्मणवाद का प्रतिरोध करता रहा। इसके बारे में आप पिछली इकाइयों में पढ़ चुके हैं। प्रस्तुत इकाई में उस अध्ययन को आगे बढ़ाने की कोशिश की जाएगी। इस इकाई के अध्ययन से आप इन बिन्दुओं से अवगत होंगे :

- बौद्ध परंपरा की अगली कड़ी के रूप में सिद्ध-संप्रदाय का परिचय प्राप्त करेंगे;
- यह जानेंगे कि सिद्ध साधक किस रूप में पूर्ववर्ती बौद्धों से अलग हैं। इस अलगाव की विशिष्टता क्या है? और इसकी परिणतियां क्या रहीं;
- सिद्धों की सक्रियता की पृष्ठभूमि कैसी थी? उस समय की ऐतिहासिक परिस्थितियां किस प्रकार की थीं और राजसत्ता तथा धर्म सत्ता का मिजाज किस प्रकार का था, यह जान सकेंगे;

- सिद्धों की संख्या 84 निर्धारित की गई थी। ये सिद्ध किन सामाजिक वर्गों से आए थे और तथाकथित ऊँची तथा नीची जाति के सिद्धों को एक ही कोटि में रखने के सांस्कृतिक निहितार्थ क्या रहे;
- आप जान सकेंगे कि सिद्ध कवियों की जो रचनाएं प्राप्त होती हैं वे किन काव्य-रूपों में हैं। उनकी अभिव्यक्ति की खासियत क्या है और उनकी भाषा का रचाव कैसा है?
- आप समझ सकेंगे कि सिद्ध साहित्य की अंतर्वस्तु क्या है। इस साहित्य का जो विद्रोही तेवर मिलता है उसकी व्याप्ति कहाँ तक है। कर्मकांडों की निंदा, धार्मिक पाखंडों का विरोध, ब्राह्मणवादी सोच की निरर्थकता, शास्त्रवाद का खंडन आदि विद्रोही स्वर के जो रूप हैं, उनकी मूल्यवत्ता क्या है;
- यह जानना भी रोचक है कि सिद्ध 'परमपद' की कामना करते हुए भी ऐहिक दृष्टिकोण वाले हैं। वे संसार को, उसके सुखों को विगर्हणीय नहीं मानते;
- सिद्ध सहज जीवन की प्रस्तावना करते हैं। वे शरीर सुख और सांसारिक भोगों से न भागना चाहिए और न उसे सब कुछ मानकर उसमें लिप्त हो जाना चाहिए। इसलिए मध्यमार्ग का चयन ही उचित है। महात्मा बुद्ध ने यही मार्ग निर्दिष्ट किया था;
- आप चिह्नित कर सकेंगे कि सिद्ध जीवन-कर्म और आध्यात्मिक-साधना की परस्पर बेरुखी को तोड़कर इनके बीच एकता का प्रतिपादन करते हैं; और
- आप यह भी जान सकेंगे कि सारी अच्छाइयों के बावजूद सिद्ध संप्रदाय की कुछ सीमाएं भी रहीं हैं। इनसे कुछ ऐसी परंपराएं भी चलीं जिनका प्रभाव बाद के दिनों में बहुत हानिकारक रहा।

7.1 प्रस्तावना

सामाजिक आंदोलनों के बारे में दो बातें गौर करने लायक हैं। पहला, किसी आंदोलन की शुरुआत न तो अचानक होती है न स्वतः स्फूर्त। आंदोलन की मानसिकता के निर्माण में लंबा वक्त लगता है और इस तैयारी में कुछ सजग-सचेत व्यक्ति प्रयत्नशील रहते हैं। दूसरा, अपनी गतिशीलता के दौरान आंदोलन का स्वरूप स्थिर नहीं रहता। उसमें निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं और ज़रूरी नहीं है कि ये परिवर्तन उसके विकास अथवा परिकार के सूचक हों। बौद्ध मत के उदय को देखें तो जानें कि इसका आरंभ एक धार्मिक आंदोलन के रूप में हुआ, सामाजिक क्षेत्र में इस मत ने उल्लेखनीय असर डाला और दार्शनिक चिंतन में कई कीर्तिमान स्थापित किए। अपने विस्तार-क्रम और विकास-यात्रा में बौद्ध मत कई शाखाओं और उपशाखाओं में बंटा। आठवीं सदी तक आते-आते यह जिस रूप में बदल गया उसे विद्वानों ने मंत्रयान, वज्रयान और सहजयान नाम दिया। इस समय देश की प्रायः सभी धार्मिक परंपराओं में तांत्रिक संप्रदाय बने। बौद्ध-परंपरा से जो तांत्रिक शाखा निकली उसी को वज्रयान, मंत्रयान अथवा सहजयान कहा गया। तांत्रिक सिद्धांतों का भारत से बाहर तिब्बत में विशेष प्रचार हुआ। सिद्धों की जो रचनाएं मिलती हैं वे प्रायः तिब्बती बौद्ध मठों से प्राप्त हुई हैं। ये रचनाएं भारत से तो नष्ट हो गईं पर तिब्बत में सुरक्षित रहीं। इन रचनाओं को तिब्बत से भारत लाने और भोट भाषा से हिंदी में प्रस्तुत करने में राहुल सांकृत्यायन ने अथक परिश्रम किया। राहुल जी से पहले बंगाल के प्रख्यात विद्वान महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री ने 1907 में नेपाल की यात्रा की। इस दौरान उन्हें कुछ अपभ्रंश दोहे तथा चर्यापद मिले। इनके रचनाकार चौरासी सिद्धों की परंपरा के थे। लगभग दस वर्ष बाद बंगीय-साहित्य-परिषद से इन रचनाओं का संकलन शास्त्री जी ने प्रकाशित कराया था। इस संकलन का नाम दिया 'बौद्ध गान ओ दोहा' और इसकी भाषा

हजार वर्ष पुरानी बंगला भाषा बताई गई। हिंदी में लगभग दो दशक बाद राहुल सांकृत्यायन की पहल पर सिद्ध साहित्य पर ध्यान दिया जाना शुरू हुआ। सिद्धों की भाषा के संबंध में राहुल जी ने यह स्थापना दी कि उनकी भाषा पुरानी मगही है। जो हो, भाषा के संबंध में राहुल जी का यह मत प्रायः मान्य हुआ कि सिद्धों की भाषा उस समय की जनभाषा थी। सिद्ध कवियों ने हठपूर्वक अपनी भाषा को संस्कृत के प्रभाव से मुक्त रखा। राहुल जी का यह मत भी गौरतलब है कि बाद में प्रयत्नपूर्वक सिद्धों की सीधी-सादी भाषा को क्लिष्ट और दुर्बोध बना दिया गया।

सिद्ध बनावटीपन के विरोधी थे। वे अतिवादी मान्यताओं का खंडन करके सहजता-स्वाभाविकता का समर्थन करते थे। वे बौद्ध परंपरा से संबद्ध थे लेकिन बौद्ध जीवनचर्या में उन्हें जो भी अनुचित लगा उसका विरोध किया। आदि सिद्ध सरहपा इस विरोध के प्रवर्त्तक थे। शील, समाधि और प्रज्ञा संबंधी पुरानी परंपराओं का उन्होंने पुनर्मूल्यांकन किया और कई बातों को अग्राह्य घोषित किया। सिद्ध अगर अपनी परंपरा के प्रति निर्मम थे तो उन पाखंडों को कैसे बख्शते, जिन्होंने समाज के अधिकांश हिस्से को अपनी गिरफ्त में ले रखा था। सिद्धों का घनघोर विरोध ब्राह्मणवाद से था। वर्णव्यवस्था जैसी अमानवीय संरचना इस ब्राह्मणवाद की देन है। सिद्ध इस क्रूर व्यवस्था की मान्यताओं पर कठोर से कठोर प्रहार करने में नहीं चूके। सरहपा इसमें सबसे आगे थे। उन्होंने ऊँच-नीच, पवित्र-अपवित्र, गम्य-अगम्य, पाप-पुण्य की ब्राह्मणवादी धारणाओं का पुरजोर खंडन किया। जीवन और साधना के बीच वर्णवादी शास्त्रकारों ने जो दीवाल खड़ी कर दी थी उसे ढहाने का प्रयास किया। शास्त्रकार ऐहिकता के प्रति तिरस्कारपूर्ण रवैया रखते थे और शरीर को गंदगी का ढेर बताकर कर्मकांड और बाह्याचार की शिक्षा देते थे। माला जपने, तीर्थाटन करने, शरीर को अतिशय कष्ट देते हुए तपस्या करने, जनसंपर्क से दूर रहने की व्यवस्था शास्त्रकारों ने कर रखी थी। शास्त्रकार स्वयं आकंठ सांसारिक सुखोपभोग में डूबे हुए होंगे लेकिन दूसरों को वे निवृत्ति का उपदेश देते थे। सिद्धों ने इस पाखंड की पोल खोली। उन्होंने शरीर को घृणित वस्तु मानने से इनकार किया और सभी तीर्थों के दर्शन काया भीतर ही करने का मार्ग बताया।

संभव है, राजनीतिक चेतना से लैस कुछ लोगों को सिद्धों का यह प्रतिरोध आज अप्रासंगिक, ग़ैर-ज़रूरी लगे। वे इस प्रतिरोध की चर्चा को बेमतलब का मानें। लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि जब हमारे देश की जनता का अधिकांश हिस्सा आज भी धर्म से अनुशासित होता है, वह धार्मिक मुहावरे में ही बात करता, ज़िंदगी गुज़ारता है तो हम कल्पना कर सकते हैं कि पूर्व मध्यकाल में क्या स्थिति रही होगी। धर्म के इलाके में संकीर्ण ब्राह्मण-दर्शन के आतंक से निपटने के लिए आज भी धार्मिक ताने-बाने को गंभीरतापूर्वक समझने तथा सुविचारित रणनीति बनाने की आवश्यकता है। अपने वक्त में अगर सिद्धों ने ऐसा किया तो उसकी मूल्यवत्ता थी और उसे स्वीकार करने की ज़रूरत है। उन्होंने जनसामान्य को ब्राह्मण-विचार के आतंक से छुटकारा दिलाने में अग्रणी भूमिका निभाई और वे एक हद तक सफल भी हुए। ब्राह्मण या हिंदू दर्शन आनंद को सर्वोपरि मानता था। सिद्धों ने आनंद को दोयम बताया और सुख को सर्वोच्च। हिंदुओं के तीन प्रमुख देवता थे ब्रह्मा, विष्णु और महेश। सिद्धों ने इन्हें तीन अत्यंत अशुद्ध नाड़ियों का अधिष्ठाता बताया। धामपाद के एक चर्यापद में हरि, हर और ब्रह्मा नाड़ियों का उल्लेख मिलता हैः

'दाढ़ई हरि हर ब्राह्मण नाड़ा नवगुण शासन पाड़ा'

टीकाकार मुनिदत्त ने संध्या भाषा के अनुसार चर्यापद का अर्थ खोलते हुए सूत्रं नाड़ी को हरि या विष्णु, शुक्रनाड़ी को हर या शिव और विट (मल, विष्ठा) नाड़ी को ब्रह्मा बताया है। चंडाग्नि के प्रज्ज्वलित होने से ये तीनों नाड़ियां जलकर राख हो जाती हैं और केवल उपाय तथा प्रज्ञा, बुद्ध और उनकी शक्ति शेष रहती है। ('सिद्ध साहित्य', धर्मवीर भारती

ग्रंथावली, भाग-9, पृ.-320)। इसी तरह की तमाम बातें सिद्धों के साहित्य में मिलती हैं जो उनकी वृहद कार्य योजना का हिस्सा थीं। प्रस्तुत इकाई में इस कार्य योजना को समझने की कोशिश की जाएगी।

7.2 सिद्ध संप्रदाय : ऐतिहासिक परिवेश

सिद्धों की सक्रियता के समय को राहुल सांकृत्यायन ने सिद्ध-सामंत युग नाम दिया है। इस समय राज्यसत्ता का स्वरूप सामंती था। समाज में प्रभुत्वशाली मानसिकता सामंती मानसिकता थी। उस वक्त का ब्राह्मणवाद सामंती मानसिकता को पोषित कर रहा था और स्वयं सामंतों से पालित-पोषित हो रहा था। इसलिए पूरे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समझने के लिए सामंती संरचना को समझना अत्यंत आवश्यक है। प्रख्यात इतिहासकार रामशरण शर्मा लिखते हैं, 'सामंती संरचना प्रभुत्वशाली भूस्वामी वर्ग तथा पराधीन कृषक वर्ग की बुनियाद पर खड़ी होती है। उसके शीर्ष पर राजा आसीन होता है, जो राजसत्ता का प्रतीक होता है, और यह सत्ता मुख्य रूप से भूस्वामी वर्ग पर अवलंबित होती है। किंतु न तो भूस्वामी वर्ग के सभी सदस्यों की आर्थिक-सामाजिक स्थिति समान होती है और न ही कृषक समुदाय के सभी लोगों की। इन दोनों वर्गों के पारस्परिक संबंध जागीरों की बख्शीश तथा उपसामंतीकरण की प्रक्रिया से निर्धारित होते हैं। उपसामंतीकरण से नियमित श्रेणी विन्यास का जन्म होता है। इस विन्यास में सबसे ऊपर स्वभावतः राजा का स्थान होता है, जिसके नीचे वे लोग आते हैं जो अपनी जीविका के लिए लगान पर निर्भर होते हैं और वसूल किए गए लगान का निश्चित भाग राज्य को देते हैं। उसके नीचे लगानदारों की श्रेणियां होती हैं, जिसके नीचे जमीन के जोतदारों और दर-जोतदारों के स्थान होते हैं। सबसे नीचे जमीन को सचमुच कोड़ने-कमाने वाले लोगों का वर्ग होता है। (पूर्वमयकालीन भारत का सामंती समाज और संस्कृति प्र.सं. 1996, पृ. 214) जो वर्ग खेती करने में लगा होता है वह उस भूमि पर कोई स्वामित्व नहीं रखता और जो उस भू-संपत्ति का मालिक होता है उसका उत्पादन कार्य से प्रत्यक्ष वास्ता नहीं रहता। घोर असमानता वाली यह व्यवस्था ही सामंती व्यवस्था कहलाती है। इस व्यवस्था में राजसत्ता को निरंकुश रहने का पूरा अवसर रहता है। राजा, सामंत, उपसामंत और तमाम बिचौलियों की विलासिता निर्बाध रहती है। कृषि-उत्पादन का लाभ उन्हें नहीं मिलता जो उसके सचमुच हकदार हैं। राहुल सांकृत्यायन का मानना है कि भारत की आर्थिक दशा उस समय पर्याप्त अच्छी थी। विदेशों से अच्छा खासा व्यापार होता था। अकेले रोम से हर साल ढ़ाई लाख तोला सोना या साढ़े पांच लाख सेस्तर्स (पौने दो करोड़ रुपये) कपड़े और दूसरी चीजों की खरीददारी के लिए आता था। इसी तरह अरब, पश्चिमी एशिया, उत्तरी अफ्रीका और यूरोप से अपार धनराशि आती थी। कृषि के साथ शिल्प और व्यवसाय की हालत उन्नत थी। लेकिन यह आर्थिक समृद्धि सारी भारतीय जनता तक नहीं पहुँचती थी। 'वस्तुतः तत्कालीन भारत की अपार संपत्ति के भोगने वाले थे, यही सामंत, पुरोहित और सेठ तथा उनके दरबारी खुशामदी।' (हिंदी काव्यधारा, पृ.15-16) जनसामान्य के भीतर राजसत्ता के खिलाफ असंतोष ज़रूर पनप रहा होगा। लेकिन, इस असंतोष की कोई संगठित राजनैतिक अभिव्यक्ति नहीं हो पा रही थी। सामंती संरचना सामान्य जनता का इस तरह स्तरीकरण कर देती थी कि वे आपस में संगठित होकर राजसत्ता के खिलाफ विद्रोह करने की सोच ही नहीं पाते थे। हाँ, इस दौरान एक उदाहरण ऐसा मिलता है जिसमें मत्स्य न्याय और सामाजिक अव्यवस्था का अंत करने के लिए साधारण जनता ने अपना शासक स्वयं चुना हो। यह उदाहरण पूर्वी भारत का है जहाँ जनता ने स्वतः एक योद्धा को शासक चुन लिया। यह अज्ञात कुलशील शासक गोपाल था। गोपाल ने पालवंश की नींव डाली। गोपाल के शासनारूढ़ होने से पहले जनता शशांक का कुशासन झेल चुकी थी। शशांक बौद्धों का कट्टर शत्रु था। उसने कुशीनगर में बौद्धों का एक विहार नष्ट कर दिया था। बुद्ध के पदचिह्नों वाला एक पत्थर

गंगा में फिकवा दिया था, बोधिवृक्ष की शाखाएं कटवा डाली थीं और बुद्ध प्रतिमा को नष्ट कर शिव-प्रतिमा की स्थापना करनी चाही थी। शशांक ने बौद्ध मतानुयायी जनता पर बहुत से अत्याचार किए थे। (सिद्ध साहित्य, पृ.58) गोपाल को क्योंकि 'प्रकृतियों' अर्थात् प्रजा ने शासक बनाया था इसलिए उसने लोकहित के नियम बनाए, बौद्ध धर्म को आश्रय दिया और लोक-कलाओं का संरक्षण किया। गोपाल के पुत्र धर्मपाल का शासन कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। उसने भी बौद्ध धर्म को प्रश्रय दिया था। उसके समय में ही पाल, प्रतीहार और राष्ट्रकूट राजवंशों के बीच कन्नौज पर अधिकार को लेकर ऐतिहासिक संघर्ष छिड़ा था। सिद्धों का केंद्र पूर्वी भारत था। पूर्वी भारत के दो राजवंश चंद्र और पाल बौद्ध थे और सिद्धों को प्रश्रय देते थे। इनके बाद जो नए राजवंश स्थापित हुए उनमें प्रमुख दो थे सेन तथा वर्मन। ये दोनों राजवंश कट्टर हिंदू थे। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि उन्होंने बौद्धों के साथ कैसा व्यवहार किया होगा। सेन राजाओं की परंपरा 13वीं शताब्दी तक चलती रही। इसी दौरान पूर्वीभारत पर मुहम्मद बख्तियार खिलजी का आक्रमण हुआ। इस आक्रमण से बौद्धों का बड़ा नुकसान हुआ। बख्तियार खिलजी ने मगध पर आक्रमण करके नालंदा बौद्ध विहार को नष्ट कर डाला और उसके अत्यंत समृद्ध पुस्तकालय को जला डाला। उसने अन्य बौद्ध विहार को नष्ट किया। बड़ी संख्या में बौद्ध भिक्षुओं ने तिब्बत जाकर शरण ली। बख्तियार खिलजी के आक्रमण का समय 1202 ई. निर्धारित किया गया है। ('मेडिवल इंडिया', पार्ट-I, सतीशचंद्र, 1997, पृ. 41, 'सिद्ध साहित्य', पृ.63)

व्यापक समाज के नियमन में राजसत्ता से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण भूमिका धर्मसत्ता की रही है। धर्मसत्ता धर्माचार्यों के नियंत्रण में थी और धर्माचार्य ब्राह्मण वर्ण के लोग ही हो सकते थे। ब्राह्मणों ने इस काल में जातियों की संख्या बढ़ानी शुरू की। जाति-व्यवस्था की संरचना इस तरह थी कि हिंसक उपाय किए बिना ही तथाकथित निम्न वर्णों के लोग उत्पीड़न को सहज-स्वाभाविक मानकर उसे स्वीकार कर लिया करते थे। ब्राह्मण राजसत्ता की निरंकुशता को जनता में स्वीकार्य बनाते थे और बदले में राजसत्ता से तमाम तरह की सुविधाएं लेते थे। ब्राह्मणों का राजसत्ता से बड़ा घनिष्ठ रिश्ता पहले से था। बहुधा लोग धर्म को राजाओं की निरंकुशता पर रोक लगाने का साधन मानते हैं। राहुल सांकृत्यायन ने इस भ्रम का निवारण करते हुए लिखा है, 'धर्म को भी राजाओं पर भारी अंकुश बतलाया जाता है, लेकिन राजाओं के टुकड़खोर पुरोहित और महंत उन पर कितना अंकुश रख सकते हैं, यह आसानी से समझा जा सकता है, खासकर जबकि उनके पीछे साधारण जनता जैसी कोई शक्ति सहायता देने के लिए मौजूद नहीं हो। जनशक्ति को तो पूरी तरह कुचलने में राजा के बाद पुरोहितों और महंतों का ही सबसे अधिक हाथ रहा है। उन्होंने भगवान और ऋषि मुनियों के नाम पर धर्म की नई व्यवस्थाएं गढ़कर जनशक्ति और जन चेतना को बिलकुल खतम कर दिया। अब उनका राजा पृथ्वी पर विष्णु का अंश था और सारे विलास तथा उत्पीड़न पहले जन्म के अच्छे कर्म के सुफल थे। धर्माचार्य यदि कुछ अंकुश रख सकते थे, तो शायद भक्ष्याभक्ष्य पर।' (हिंदी काव्याधारा, पृ.24)

विद्वानों का मत है कि इस काल में भक्ष्याभक्ष्य के संबंध में विशेष कड़ाई बरती जानी शुरू हुई। भक्ष्याभक्ष्य के नियमों में कड़ाई का मतलब था जाति व्यवस्था की क्रूरता में वृद्धि। हम जानते हैं कि जाति-व्यवस्था हिंसा का एक रूप है। हिंसा के संबंध में यह धारणा सही है कि हिंसा हमेशा दोतरफा नुकसान करती है। जिन पर हिंसा की जाती है वे तो इसके शिकार होते ही हैं लेकिन जो हिंसा करते हैं, हिंसा उन्हें भी नहीं बख्शती। खान-पान के नियमों में कठोरता आने से तथांकथित निचली जातियां तो दुष्प्रभावित हुई हीं तमाम ब्राह्मण जातियां भी हाशिए पर ढकेल दी गईं। मनुस्मृति में कुछ ब्राह्मण-जातियों के बारे में व्यवस्था दी गई है कि उन्हें श्राद्ध के अवसर पर तथा मांगलिक कार्यों में कदापि न बुलाया जाए। उनका यथासंभव तिरस्कार करना चाहिए। आठ कनौजिया नौ चूल्हे वाली

प्रथा इसी काल में शुरू होती है जब मोटे तौर पर एक ही तरह के ब्राह्मण भी आपसी खानपान, रोटी-बेटी के संबंध में छुआ-छूत बरतते हैं। छुआछूत की प्रथा अपने घर से लागू करके ही वे इस व्यवस्था को वैधता देते हैं। जहाँ तक तथाकथित नीची जातियों पर मनुवादी व्यवस्था के असर की बात थी वहाँ राहुल सांकृत्यायन के इस निष्कर्ष से सहमति व्यक्त की जा सकती है कि, 'बहुत सी नीच कही जाने वाली जातियों के प्रति तो ब्राह्मणों की व्यवस्था बहुत क्रूर थी। कितनी क्रूर थी इसका अंदाजा कुछ-कुछ आपको लग सकता है, यदि परम अद्वैतवादी शंकराचार्य की जन्मभूमि मलबार के पंचमों की बीसवीं शताब्दी की अवस्था का आपको थोड़ा सा परिचय हो। उस युग के नगरों की बहुत सी सड़कें उनके लिए वर्जित थीं, कितनी ही सड़कों पर थूकने के लिए उन्हें अपने साथ पूरवा रखना पड़ता था। लेकिन ब्राह्मणों की एक और भी व्यवस्था थी- 'स्त्री-रत्न दुकुलादपि' इसलिए क्षेत्रिय ब्राह्मण भी शूद्रा स्त्री से पार्शव सन्तान पैदा करने का पूरा अधिकार रखता था। ब्राह्मणों ने मिथ्या-विश्वासों को फैलाने, वयस्क मानवता को बच्चा बनाने के लिए पुराणों की संख्या और कलेवर को इसी काल में खूब बढ़ाया। बुद्धि रखने वालों पर यह हथियार नहीं चलता, इसलिए इसी युग में बुद्धि को भूलभुलैया में डालने के लिए शंकर (788-830 ई.), श्री हर्ष (1180 ई.) जैसे दार्शनिकों ने 'मुँह में राम बगल में छुरी' वाला अद्वैतवाद पैदा किया।' (हिंदी काव्यधारा, पृ.40-41)

तांत्रिक संप्रदायों का उदय जातिवादी समाज व्यवस्था में आई कठोरता का परिणाम माना जाता है। शाम्ब पुराण के अनुसार लक्ष्मीपति अर्थात् नारायण विष्णु ने तंत्र का प्रवर्तन वेद-विरुद्ध आचरण करने वालों के लिए किया। (रामशरण शर्मा, वही, पृ.200) तंत्र संप्रदायों के निर्माण और प्रसार में ऐसे ब्राह्मणों की महत्वपूर्ण भूमिका रही जो जाति व्यवस्था को नहीं मानते थे और जिन्होंने ब्राह्मणों के लिए विहित कर्मों को छोड़कर अन्य व्यवसाय अपना लिए थे। ब्राह्मण-व्यवस्था में शारीरिक श्रम को हेय माना जाता है। इसलिए, कर्मकांडी ब्राह्माणों द्वारा ऐसे ब्राह्मणों को तिरस्कृत किया गया जो श्रमजीवी थे और तथाकथित दैहिक पवित्रता के प्रति बेपरवाह थे। धर्मवीर भारती का मत है कि पूर्वी प्रांतों की ब्राह्मण जातियों में व्यवसाय विपर्यय ज्यादा हुआ इसलिए यहाँ तंत्र संप्रदाय भी ज्यादा मजबूत रहा। (सिद्ध साहित्य, पृ.116)

7.3 चौरासी सिद्ध : सामाजिक आधार

तंत्र संप्रदाय हिंदू कर्मकांड और सामाजिक विषमता के प्रति असंतोष की उपज थे। ये संप्रदाय इसीलिए जनभावनाओं को निकट पड़ते थे। तंत्र-संप्रदाय की समाजार्थिक पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए रामशरण शर्मा ने लिखा है कि इनकी दृष्टि 'सर्वथा संप्रदाय-निरपेक्ष एवं भौतिकवादी थी। विभिन्न वर्गों के जीवन के जितना निकट तंत्र संप्रदाय था उतना अन्य कोई संप्रदाय नहीं था। शायद यही कारण है कि यह संप्रदाय भारत में काफी दीर्घायु हुआ और इसके मूल तत्व आज भी कामय हैं।' (वहीं, पृ.190) हिंदू तंत्र संप्रदायों की अपेक्षा बौद्धों से संबद्ध सिद्ध संप्रदाय अधिक समानतावादी था। शैवों और वैष्णवों के संप्रदाय प्रायः साधना में प्रवृत्त होने के समय वर्ण भेद को भुला दिया करते थे जबकि सिद्ध वर्ण भेद को सिद्धांततः अस्वीकार करते थे। उनके इस अस्वीकार के पीछे बौद्ध दार्शनिक चिंतन की एक सुदीर्घ पृष्ठभूमि थी। चौरासी सिद्धों की सूची पर एक नज़र डालें तो पाएंगे कि उसमें सभी जातियों के सिद्ध विद्यमान हैं। सिद्ध, असल में एक उपाधि है जो उन साधकों को प्रदान की जाती थी जो कुछ विलक्षण सिद्धियों को उपलब्ध कर लेते थे। ऐसे साधकों का संप्रदाय में विशेष महत्व होता था। जाति के आधार पर देखें तो चौरसी सिद्धों में बहुत से सिद्ध शूद्र और अति शूद्र जातियों से हैं। दीगर जातियों के साथ शूद्रों को समान स्थान किसी अन्य परंपरा में मिला हो, ऐसा नहीं दिखता। भक्तिकाल में ऐसी स्थिति देखी जाती

है। लेकिन, वहाँ निर्गुण संप्रदायों में प्रायः सब अवर्ण हैं और सगुण संप्रदायों में प्रायः सब सवर्ण। संभवतः चौरासी सिद्धों की प्रसिद्धि देखकर उसके अनुकरण पर सगुण शाखा के बल्लभ संप्रदाय में चौरासी वैष्णवों और दो सौ बावन वैष्णवों की परिकल्पना की गई। इन वैष्णवों में भी बहुत से वैष्णव अवर्ण हैं। बल्लभ संप्रदाय ने बहुत कोशिश की कि नई उभरती सामाजिक शक्तियों को अपने साथ जोड़ा जा सके। जाति प्रथा के प्रति अपने रुख को पर्याप्त लचीला बनाते हुए संप्रदाय ने सभी जातियों को चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवों की सूची में जगह दी। लेकिन, बल्लभ संप्रदाय वर्ण-व्यवस्था में सिद्धांततः विश्वास रखता था इसलिए अवर्ण वैष्णवों के प्रति उसकी अवमाननापूर्ण दृष्टि विलुप्त नहीं हुई। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता' नामक ग्रंथों में जिन अवर्ण वैष्णवों की वार्ताएं दी गई हैं उन वैष्णवों के नाम नहीं दिए गए हैं बल्कि उन्हें जाति नाम से लिखा गया है जैसे 'सूत्तार कारीगर की वार्ता', 'एक चूहडो गोवर्धन वाला', 'एक चूहड़ो बहारवाला', 'एक चूहड़ों की वार्ता' आदि। वार्ताकार ने अमंगल की आशंका में इनके नाम नहीं दिये हैं क्योंकि किसी वैष्णव का नाम न देना अनायास नहीं है। मनुस्मृति में शूद्रों के नाम अशुभसूचक रखने का विधान है। स्पष्ट है कि इस दावे में कोई दम नहीं कि सगुण भक्ति धारा में सभी जातियों के प्रति समान व्यवहार किया गया था। सिद्ध संप्रदाय की स्थिति इस संदर्भ में बिल्कुल अलग है। वहाँ जातिगत पहचान का नकार वर्णव्यवस्था के अस्वीकार से पैदा हुआ है इसलिए वह पुष्टि मार्ग की तरह व्यावहारिक ज़रूरत नहीं, वैचारिक प्रतिबद्धता का प्रकटन है। चौरासी सिद्धों की कई सूचियां मिलती हैं। इनमें एकरूपता नहीं है। जो दो सूचियां महत्वपूर्ण मानी गई हैं उनमें एक 'वर्ण रत्नाकर' नामक ग्रंथ में प्राप्त सूची है और दूसरी तिब्बत के सस्क्य विहार से प्राप्त हुई है। 'वर्ण रत्नाकार' वाली सूची नाथ सिद्धों की मानी जाती है जबकि तिब्बती परंपरा की सूची सहजयानी सिद्धों की। कई सिद्धों के नाम दोनों ही सूचियों में मिलते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने दोनों सूचियों की प्रासंगिक तुलना की है। (देखें, 'नाथ सम्प्रदाय', हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली-6, पृ. 44-47 तथा आगे) सहज यानी सिद्धों की सस्क्य विहार से प्राप्त सूची त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन द्वारा निर्दिष्ट है। यह सूची विद्वानों द्वारा स्वीकृत है। इसमें सभी चौरासी सिद्धों के नाम तथा प्रायः सभी सिद्धों की जाति व जन्म-स्थान का उल्लेख है। यह सूची अवलोकनार्थ प्रस्तुत की जा रही है:

7. 'लुइपा, कायस्थ, मगध, 8. लीलापा, 3. विरूपा, मगध, 4. डोम्बिपा, क्षत्रिय, मगध, 5. शबरपा, क्षत्रिय, बिक्रमशिला, 6. सरहपा, ब्राह्मण, नांलन्दा, 7. कंकालीपा, शूद्र, मगध, 8. मीनापा, मछुआ, कामरूप, 9. गोरक्षपा, 10. चौरंगीपा, राजकुमार, मगध, 17. वीणापा, राजकुमार, गौड़ (बिहार), 18. शांतिपा, ब्राह्मण, मगध, 13. तन्तिपा, (तन्तवा) सोधों नगर, 14. चमारिपा, (चर्मकार), विष्णुनगर (पूर्वदेश), 15. खड्गपा शूद्र, मगध, 16. नागार्जुन, ब्राह्मण, कांची, 17. कण्हपा (चर्यापा), कायस्थ, सोमपुरी, 18. कर्णरिपा या आर्यदेव, नालन्दा, 19. थगनपा शूद्र, पूर्वभारत, 20. नारोपा, ब्राह्मण, मगध, 27. शलिपा या शीलपा शूद्र, विधसुर, 28. तिलोपा या तिल्लोपा, ब्राह्मण, भिनुगर, 23. क्षत्रपा, शूद्र, संधोनगर, 24. भद्रपा, ब्राह्मण, मणिधर, 25. दोखंधि या द्विखंडिपा, गंधपुर, 26. अजोगिपा, गृहपति, सालिपुत्र, 27. कालपा, राजपुर, 28. धोम्भिपा धोबी, सालिपुत्र, 29. कंकणपा राजकुमार, विष्णुपुर, 30. कमर या कंबलपा, उड़ीसा, 37. डेंगिपा, ब्राह्मण, विक्रमशिला, 37. महीपा या महिलपा शूद्र, मगध, 38. अचिंतिपा, लकड़हरा, धनिरूप, 39. भलह (भवपा) क्षत्रिय, धंजुर देश, 40. नलिनपा, सालिपुत्र, 47. भुसुकपा, राजकुमार, नालन्दा, 48. इन्द्रप्रभूति, राजा, लंकापुर, 43. मेकोपा, वणिक्, भंगलदेश, 44. कुठालि (कुद्दालिपा) रामेश्वर, 45. कमीर या कम्परिपा, लोहार, सालिपुत्र, 46. जालन्धरपा, ब्राह्मण, नगर, 47. राहुलपा, शूद्र कामरूप, 48. धर्वरि या धर्भरिपा, बोधिनगर, 49. धोकरिपा, शूद्र, सालिपुत्र, 50. जोगीपा या अजोगिपा, डोम, उडन्तपुरी,

54. चेलुकपा, शूद्र, भंगलपुर, 55. गुंडरिपा या गोरूरपा, चिड़ीमार, डेसुनगर, 56. लुचिकपा, ब्राह्मण, भगलदेश, 57. निर्गुणपा, शूद्र, पूर्वदेश, 56. जायनप्त, ब्राह्मण, भंगलपुर, 59. चर्पटी, या पचरीपा, कहार, चम्पा, 60. चम्पकपा, राजकुमार, 67. भिखनपा, शूद्र, सालिपुत्र, 68. भलिपा, कृष्णघृतवणिक्, सतपुरी, 63. कुमरिपा, जोमन, श्रीदेश, 64. चवरि (या हवरि-अजपालि) पा, 65. मणिभद्रा या योगिनी, गृहदासी, मगध, 66. मेखलापा या योगिनी, गृहपतिकन्या, अगचेनगर, 67. कनखलापा या योगिनी, देवीकोट, 68. कनखलापा, शूद्र, भिरलिनगर, 69. कंताली या कंथालीपा, दर्जी, मणिधर (मैहर), 70. धहुलि या धहुरिपा, शूद्र धेकरदेश, 77. उधलि या उधरिपा, वैश्य, देवीकोट, 78. कपाल या कमलपा, शूद्र, राजपुरी, 73. किलपा, राजकुमार, प्रहर (सहर), 74. सागरपा, राजा, कांची, 75. सर्वभक्षपा, शूद्र, महर (सहर), 76. नागबोधिपा, ब्राह्मण, पश्चिम भारत, 77. दारिकपा, राजा, उड़ीसा, सालिपुत्र, 78. पुतुलिपा, शूद्र, भगलदेश, 79. पनह या उपानहपा, चमार, सन्धोनगर, 80. कोकालिपा, राजकुमार, चंपारन, 87. अनंगपा, शूद्र, गौड़ देश, 88. लक्ष्मीकरा या योगिनी, राजकुमारी, संभलनगर, 83. समुदपा, सर्वडिदेश, 84. भलि या व्यालिपा, ब्राह्मण, अपत्र देश' (सिद्ध साहित्य, पृ. 33)।

इस सूची में सिद्धों के जन्म स्थान का जो निर्देश किया गया है उन सबकी वर्तमान स्थिति का ठीक-ठीक पता लगाना मुश्किल है। यही बात जाति के संदर्भ में भी है। कुछ सिद्धों की ज़ातियां नहीं बताई गई हैं। इसके बारे में अनुमान ही लगाए जा सकते हैं। जो हो, बौद्ध सहजयानी सिद्धों की यह सूची ही प्रामाणिक मानी जाती है।

7.4 अवजातीकरण की परंपरा का आरंभ

जाति-विमर्श के क्षेत्र में अवजातीकरण (De-casticization) की अवधारणा पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया गया है। इसके उलट जिस अवधारणा पर खूब चर्चा हुई है वह समाजशास्त्री एम.एन. श्रीनिवास द्वारा पेश संस्कृतीकरण (Sanskritization) की अवधारणा है। संस्कृतीकरण की अवधारणा के अनुसार प्रभुत्वशाली जाति के सांस्कृतिक व्यवहारों का अनुकरण उस क्षेत्र की अन्य जातियाँ करती हैं। भारतीय समाज में प्रभुत्व प्रायः सवर्ण जातियों का रहा है और इसलिए अधीनस्थ जातियाँ उन्हीं की नकल करती हैं। अनेक बार इस ललक के चलते ये जातियां ऊँची जातियों में शामिल हो गई हैं। अवजातीकरण की प्रक्रिया इसके विपरीत है। इसमे ऊँची जाति का व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक किसी निचली जाति में शामिल होता है। अवजातीकरण की अवधारणा का व्यावहारिक रूप हमें कई सिद्धों के जीवन में दिखाई पड़ता है। ऊपर दी गई सिद्धों की सूची में हमें सिद्धों के नाम के साथ-साथ उनकी जाति की जानकारी प्राप्त होती है। वास्तव में, यह बात ध्यान देने लायक है कि जो विचार परंपरा वर्ण-जाति की अवधारणा मे विश्वास नहीं रखती उसकी सूची में जाति का उल्लेख क्योंकर है। फिर, सिद्ध तो वे पहुँचे हुए साधक थे जो प्रदत्त सामाजिक पहचानों से ऊपर उठ चुके थे। जाति के उल्लेख का कारण शायद यह हो कि सूचीकार व्यापक समाज की जिज्ञासा को ध्यान में रखते हुए उन जातियों का उल्लेख करना ज़रूरी समझता हो जिनमें सिद्धों का जन्म हुआ। जन्म के संयोग से मिली जातिगत पहचान को इन सिद्धों ने, उनके संप्रदाय ने नकार दिया यह दर्शाना भी सूचीकार की एक मंशा हो सकती है। गौरतलब यह भी है कि उक्त सूची तिब्बती परंपरा से प्राप्त की गई है। तिब्बती समाज वर्ण-व्यवस्था से अनुशासित समाज नहीं रहा है।

कुछ परंपराएं लुइपा को आदि सिद्ध मानती हैं और कुछ सरहपा को। राहुल सांकृत्यायन ने सप्रमाण सरहपा को आदि सिद्ध कहा है। वस्तुतः सरहपा ने ही बौद्ध तंत्रों को सुगठितकर संप्रदाय का प्रवर्त्तन किया था। सिद्धों के नाम के साथ पा या पाद शब्द जुंड़ा। यह शब्द उनके प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए है।

अवजातीकरण की प्रक्रिया को समझने के लिए सरहपा के जीवन पर निगाह डाली जा सकती है। सरहपा के जीवन के बारे में जो सूचना हमें मिलती है उसके स्रोत तिब्बती ग्रंथ हैं। राहुल सांकृत्यायन ने इन सूचनाओं को प्रामाणिक माना है। सरह का जन्म राज्ञी नामक नगर में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। राज्ञी नगर को पूर्व दिशा (पूर्वीभारत) में स्थित बताया गया है। यह पता नहीं चलता कि सरहपा का शुरुआती नाम क्या था। जब वे बौद्ध हो गए तो उनका नाम राहुल भद्र पड़ा। नालन्दा उस वक्त बौद्ध विद्यापीठ के केंद्र के रूप मे सुविख्यात था। राहुल भद्र पहले इस विद्यापीठ में छात्र थे बाद में यही आचार्य नियुक्त हो गए। नालन्दा विद्या का केंद्र था और वर्जनाओं का केंद्र भी। बौद्ध भिक्षु तमाम मर्यादाओं से बंधे थे। उनका जीवन सहज नहीं था। उनके शरीर पर हमेशा चीवर रहता था। वे स्त्री का सान्निध्य नहीं कर सकते थे। मद्यपान की सख्त मनाही थी। राहुल भद्र को ऐसा अतिवादी अनुशासन गैर-ज़रूरी और पाखंडपूर्ण लगा। उन्होंने इस ढोंग को अस्वीकार कर नालन्दा विद्यापीठ छोड़ दिया। आचार्य होने के कारण वे अपनी ब्राह्मण पहचान से भी मुक्त नहीं रहे होंगे। राहुल ने इस स्थिति से विद्रोह किया। वे एक शर-कार (बाण बनाने वाले) की लड़की के साथ रहने लगे। लेकिन यह पर्याप्त नहीं था। उन्होंने शर-कार का व्यवसाय भी अपनाया और बाण बनाने का धंधा करने लगे। इसी से उनका नाम सरहा या सरह पड़ा। अवजातीकरण की प्रक्रिया इस प्रकार पूरी हुई। सरह सहज जीवन के प्रस्तोता और ईमानदार अभ्यासी कहे गए। ब्राह्मण और (बौद्ध) आचार्यत्व में उन्हें सहजता का अभाव दिखाई पड़ा होगा। सिद्ध परंपरा में स्त्री-संग को लेकर वर्जना या कुंठा का भाव नहीं आया। वहां तो यह आवश्यक ठहराया गया कि साधना पूरी तभी होती है जब महामुद्रा अर्थात स्त्री-साधिका का सहयोग मिले। सरह के शिष्य शबर थे। शबर नाम से उनके आदिवासी होने का अनुमान न लगाया जाए। यह भी अवजातीकरण से ही संभव हुआ था। सस्क्य सूची के अनुसार शबर की मूल जाति क्षत्रिय थी। अपने गुरु के अनुकरण पर वे भी क्षत्रिय से शबर हुए होंगे। उनका पहले का नाम क्या था यह ज्ञात नहीं है। सरह का एक गीत बहुत मोहक है। इसमें शबर बालिका और उसके प्रेमी शबर का चित्रण है। तंत्रपरंपरा के लोग इस गीत की व्याख्या उसके प्रतीकों के आधार पर करेंगे लेकिन हमारे लिए यह भी महत्त्वपूर्ण है कि इस गीत में शबर और शबरी को नायक-नायिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है और उस परिवेश का भी चित्रण है। गीत की कुछ पंक्तियां देखी जा सकती हैं।

ऊँचा-ऊँचा पाबत तहिं वसइ सबरी बाली।
मोरङ्गी पिच्छि पहिरहि सबरी गीवत गुजरी माला।
ऊमत सबरो पागल सबरों, माकर गुली-गुहाड़ा।
तोहारि णिअ धरिणी सहज सुन्दरी।।
पाणा तरूवर मौलिल रे, गअणत लागेलि डाली।
एकली सबरी ए वनहिण्डइ, कर्ण कुण्डल वज्रधारी।.....

ऊँचे-ऊँचे पर्वत पर शबर-बालिका बैठी है, जिसके सिर पर मोर पंख और ग्रीवा में गुंजा की माला है। उसका प्रिया शबर प्रेम में उन्मत, पागल है। ओ शबर, तू हल्ला-गुल्ला मत कर। तेरी अपनी (निज) गृहणी सहज सुन्दरी है। उस पर्वत पर नाना प्रकार के तरूवर फूले हुए हैं, जिनकी डालियां गगन से लगी हुई हैं। कान में कुण्डल-बज्रधारे शबरी अकेली इस वन में घूम रही है। (दोहा कोश, सिद्ध सरहपाद, पृ. 24-25)

सूची में 34वें स्थान पर सिद्ध कुक्कुरीपा का नाम आता है। कुक्कुरीपा कपिल वस्तु के ब्राह्मण थे। ब्राह्मण परंपरा के अनुसार उनका प्रारंभिक नाम कुछ और रहा होगा। कुक्कुरीपा नाम से साफ़ संकेत मिलता है कि उन्होंने अपना अवजातीकरण किया था। इसी तरह 22वें स्थान पर तिलोपा का नाम हैं। तिब्बती परंपरा के तारानाथ पर विश्वास

किया जाए तो ये मूलतः ब्राह्मण थे और पूर्वी भारत में पैदा हुए थे। इन्होंने बाद में बौद्ध मत ग्रहण कर लिया और भिक्षु हो गए। कालान्तर में इनका झुकाव सिद्ध संप्रदाय की ओर हुआ और इन्होंने अपने क्षेत्र के एक तेली परिवार की कन्या को साधना में सहयोगी बनाया। इन्हें संघ से निकाल दिया गया। इन्होंने जीविका के लिए तेली जाति का व्यवसाय भी अपनाया। इसी से इनका नाम तिलोपा पड़ा। अवजातीकरण के कुछ अन्य उदाहरण भी ढूंढे जा सकते हैं। प्रतीत होता है कि अवजातीकरण की प्रवृत्ति उस समय पर्याप्त प्रचलित थी। संभव है पाल वंश के शासन ने इस प्रवृत्ति के उभार में कुछ योगदान किया हो। जैसा कि पहले कहा गया कि पाल वंश का संस्थापक गोपाल स्वयं अकुलीन परिवार का था। उसका तथा उसके उत्तराधिकारियों का झुकाव ब्राह्मण धर्म की ओर न होकर लोक धर्मों विशेषकर बौद्ध धर्म की ओर था। राजसत्ता के रुख़ का असर जनता पर पड़ता ही है। पाल वंश का मजबूत शासन अपेक्षाकृत लंबे समय तक चला। इस दौरान शिल्पियों, कारीगरों तथा अन्य श्रमजीवी जातियों की हालत में सुधार आया होगा तथा उनके प्रति व्यापक समाज के दृष्टिकोण में बदलाव भी हुआ होगा। समाज पर ब्राह्मणी-मानसिकता की पकड़ ढीली पड़ी होगी। इससे व्यवसाय विपर्यय होने शुरू हुए होंगे। अपने अध्ययन में धर्मवीर भारती ने दर्शाया है कि, 'पूर्वीय प्रांतो में यह व्यवसाय-विपर्यय और शीघ्रता से हुआ होगा क्योंकि पूर्वीक्षेत्र के लोगों ने पहले ही पश्चिमी अनुदार और कर्मकांडी ब्राह्मणों के नियम नहीं स्वीकार किए थे और इसी कारण उन्हें बराबर ब्रात्यों की संख्या मिलती रही। बहुत से विद्रोही, उदारमना ब्राह्मण इन नयी और सशक्त जातियों से अधिक निकटता अनुभव करते थे। उनका जीवन, उनका चिंतन सभी उन्हें अनुदार ब्राह्मण कर्मकांड से अधिक मानवीय, स्वस्थ और सहज लगती थी और स्पष्ट है कि सरहपा आदि उसी प्रकार के लोक जीवन के साथ चलने वाले विद्रोही ब्राह्मण थे। उसके अतिरिक्त भी बहुत से सिद्ध या तो इन्हीं जातियों से उत्पन्न हुए थे या उन्होंने उन्हीं का रहन-सहन और व्यवसाय भी अपना लिए थे। सस्क्य सूची में अधिकांश सिद्ध जन्मना शूद्र या क्षत्रिय बताए गए हैं और कुछ सिद्धों ने निम्न वर्ग की स्त्रियों से विवाह कर उनकी आजीविका अपना ली थी। सरहपा अपनी महामुद्रा साधना से विवाह के उपरान्त तिल कूटने लगे थे। इसी प्रकार रोटी (या रोज़ी) और बेटी दोनों ही दृष्टि से ये सिद्ध श्रमजीवी जातियों के साथ थे और आचार्य (क्षितिमोहन) सेन ने रोटी और बेटी इन्हीं दो तत्वों को भारतीय जातिभेद का आधार माना है।' (सिद्ध साहित्य, पृ. 78-79)

अवजातीकरण की अवधारणा और उसके व्यावहारिक प्रयोग को सिद्ध संप्रदाय की विशेष देन मानना चाहिए। इस अवधारणा ने जड़ीभूत जाति व्यवस्था को तोड़ने तथा वर्ण-जाति-संरचना के प्रति उपजाए गए पवित्रता-भाव को नष्ट करने में उल्लेखनीय भूमिका निभाई होगी। जाति की जकड़बंदी को तोड़ना सिद्धों के लिए आसान नहीं रहा होगा। सरहपा के जीवन से जुड़ी एक अनुश्रुति इस संदर्भ में याद की जा सकती है। तिब्बती गुरु तारानाथ के अनुसार एक राजा (संभवतः रत्नपाल) अपनी असंख्य प्रजा के साथ सरहपा को देखने आया। सरहपा ने बताया कि वे ब्राह्मण जाति से हैं लेकिन एक निम्न वर्णीय कन्या के साथ रहते हैं। जाति या अजाति, पुण्य या पाप उनके लिए सब समान हैं। लोगों ने इन पर संदेह किया, इनकी निंदा की। सरहपा ने उन्हें अपने दोहे सुनाए। राजा प्रभावित हुआ और समस्त प्रजा के साथ इनके संप्रदाय में दीक्षित हो गया। (सिद्ध साहित्य, पृ. 43)

यह विचार योग्य है कि सिद्ध युग के बाद महान भक्ति आंदोलन में अवजातीकरण का कोई उल्लेखनीय उदाहरण क्यों नहीं मिलता? द्विज परिवारों से आए भक्त कवि जाति प्रथा की न तो वैसी सैद्धांतिक आलोचना कर पाते हैं और न ही किसी स्तर पर अवजातीकरण का साहस दिखा पाते हैं। वे श्रमजीवी निम्न जातियों के साथ नहीं हैं। इनमें ज्यादातर मंदिरों में रहते हैं। वे प्रायः मंदिरों के ही काम के हैं।

7.5 सिद्ध साहित्य में व्यक्त सामाजिक चेतना

सिद्ध सामाजिक समानता में पूरा यकीन रखते थे। वे जानते थे कि निहित स्वार्थों के चलते धर्माचार्यों ने जन सामान्य को धार्मिक कर्मकांडों में उलझाए रखा है। जनता के इस उलझाव को वे खत्म करना चाहते थे। उन्होंने अपने जीवन कर्म से, साधना से, रचनाओं से इस दिशा में प्रयास किया। पाखंड-उद्घाटन उनका एक प्रमुख उद्देश्य था। वे जहाँ भी अर्थहीन, अनर्थकारी कर्मकांड पाते हैं, उसकी निंदा करते हैं। जनता को वे आगाह करते हैं कि वह धार्मिक मोहजाल में न फंसे। सभी धर्मों ने अपने अनुयायियों के लिए कुछ न कुछ सम्मोहनकारी कर्मकांड बना रखे हैं। इन्हीं कर्मकांडों से धर्म के ठेकेदारों के हित सधते हैं इसलिए इन कर्मकांडों को ही धर्म के सत्व के रूप में प्रचारित किया जाता है। कर्मकांडों पर कोई आघात सहन नहीं किया जाता। ऐसा आघात करने वालों से धर्म का मजबूत तंत्र देर-सवेर बदला लेता है। सिद्ध पाखंड-पोषित धर्म की गहरी पैठ समझते हैं और वे लगातार कर्मकांड के सम्मोहन को मिटाने की कोशिश करते दिखाई देते हैं। सरहपा ने अपने दोहा कोश-गीति के शुरू के बारह दोहों में अपने समय के धार्मिक संप्रदायों और उनके विचारों का खंडन किया है। सबसे पहले ब्राह्मण मत का खंडन है फिर पाशुपत और जैन धर्म के साथ बौद्ध मत का भी। ब्राह्मणों के विषय में वे कहते हैं कि ब्राह्मण भेद नहीं जानते, अविवेकी हैं, व्यर्थ ही चारों वेद पढ़े हैं। मिट्टी, पानी और कुश लेकर (मंत्र) पढ़ते हैं और घर में बैठकर अग्नि में होम करते हैं। अकारज होम होती है। कडुंवे धुएं से आँखें जलती हैं। भगवा भेस धारे एकदंडी, त्रिदंडी ज्ञानी बनकर (ज्ञानी होने का नाटक कर) उपदेश देते हैं। इन्हें तो धर्म-अधर्म का फर्क ही नहीं मालूम-

ब्रह्मणेंहिं म जानन्त ही भेउ। एवइ पढिअउ ए चउवेउ।।
मट्ठी पाणी कुस लइ पढन्ते। घरहिं बइसी अग्गि हुणन्तँ।।1।।
कज्जे विरहिअ हुअवह होमें। अक्खि डहाविअ कडुएँ धूमें।।
एकदण्डी त्रिदण्डी भअवँ वेसें। विडुआ होइअइ हंस उएसें।।2।।
मिच्छेंहि जग वाहिअ भुल्ले। धम्माधम्म ण जाणिअ तुल्ले।।3।।

शैवों के बारे में कहा कि ये राख लपेटे हुए साधु होते हैं जिनके माथे पर (ज्ञान का नहीं) जटाओं का भार होता है। घर में बैठकर दीपक जलाते हैं और किसी कोने में घंटा बजाते हैं। आँख बंद किए आसन बांधे बैठे रहते हैं और कान में फुसफुसाकर लोगों को ठगते हैं। जैन मुनियों के बारे में बताया कि लंबे नाखून रखने वाले यती भेस से ही मलिन होते हैं। बाल उखाड़ते (केश लुंचन करते) हैं और नंगे रहते हैं। यदि नंगे रहने से मुक्ति हो तो कुत्ते और सियार भी मुक्त हो जाएंगे। मोर पंख ग्रहण करने से यदि मोक्ष हो तो मोर और चंवर भी मोक्ष पा जाएंगे। शिला चुगकर खाने से यदि ज्ञान हो जाए तो करि और तुरंग भी ज्ञानी हो जाएंगे। बौद्धों के बारे में कहा कि ये प्रवज्या भेस के बंदी हैं, अथवा प्रवज्या भेस की बदौलत ही वंदनीय होते हैं- 'वंदेहिअ पब्बज्जिउ बेसें '। मोक्ष प्राप्ति के लिए कोई बौद्ध कहीं दौड़ रहा है, और कोई कहीं। ध्यान में प्रविष्ट होने भर से क्या मोक्ष मिल जाएगा? धूप, दीप, नैवैद्य से, मंत्र जाप से मुक्ति मिलेगी? तीर्थ तपोवन जाने से क्या फायदा? भला पानी (जल-विशेष) में नहाने से मोक्ष-लाभ होगा? ये झूठे बंधन हैं, इन्हें त्यागो। मूढ़ता का मोचन करो। (दोहा कोश-गीति, षट्दर्शन खंडन)

शास्त्रवाद ब्राह्मण-चिंतन का आधार है। सरह इस आधार पर चोट करते हैं। ब्राह्मणों ने शास्त्रों का अंबार खड़ा कर दिया है। एक बार इसके चक्कर में कोई पड़ जाए तो निकल नहीं सकता। सरह कहते हैं कि शास्त्र तो मरूस्थल हैं, जिसकी भूलभुलैया में पड़कर आदमी निकल नहीं सकता। उसको तो प्यासे ही मरना है: 'बहु सात्तात्थ-मरूत्थंलेहिं,

तिसिअ मरिब्बोत्तेहिं। (दोहाकोश, 44) लोग तंत्र-मंत्र के चक्कर में पड़े रहते हैं। तंत्र-मंत्र की फांस एक बार गले में पड़ जाए तो छूटती नहीं। सरह तंत्र-मंत्र को विभ्रम का सबसे बड़ा कारण बताते हैं: 'मन्त ण तन्त ण धेअ ण धारण। सब्बवि रे बढ़ विभ्रम कारण।' (वही, 34) पंडितों ने तो सत्य कथन का जिम्मा ही ले रखा है। वे इतना ही नहीं जानते कि बुद्ध-परम ज्ञान का वास शरीर में ही है:

पंडिअ सअल सत्थ बक्खाणअ।
देहहि बुद्ध वसन्त ण जाणअ।।

सहज जीवन पर सरह का अत्यधिक बल है। किसी भी तरह के पाखंड और कर्मकांड के प्रति उनकी असहिष्णुता से यह बात समझी जा सकती है। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार सरह की सबसे बड़ी देन सहज या नैसर्गिक जीवन पर जोर देना है। सहजवाद के वे पहले आचार्य हैं। उनका पंथ इसीलिए सहजयान कहलाता है। भाँति-भाँति के साधुओं की जमात जब आज इतनी बड़ी है तो सरह के समय की कल्पना की जा सकती है। संसार, जीवन और देह को धिक्कारते हुए हिंदू, बौद्ध और जैन साधु आम जनता के मन में भी धिक्कार भाव भरते थे। ये स्वयं कोई उत्पादक काम न करके शेष समाज पर भार बने रहते थे। चित्तवृत्तियों का दमन इनकी मजबूरी थी और इससे ये तमाम विकृतियों के शिकार रहते थे। सरह ने इस जमात को नजदीक से देखा था। वे इसीलिए कहते हैं:

धरहि म थक्कु म जाहि वणे, जहितहि मण परिआण।
सअलु णिरन्तर बोहि-ठिअ, कहिं भव कहिं णिवबाण।
णउ घरे णउ वणें बोहि ठिउ, एहु परिआणहु भेउ।
णिम्मल चित्त-सहावता, करहु अविकल सेउ।।

घर में न रहो न वन में, सब जगह तो निरन्तर बोधि (परमज्ञान) स्थित है, फिर कहां भव (संसार) और कहां निर्वाण? न घर में बोधि (परमज्ञान) है न वन में इस भेद को अच्छी तरह समझ लो। चित्त का निर्मल होना असली बात है। (दोहा कोश, भूमिका, राहुल सांकृत्यायन, पृ.27) सरह भोग और त्याग के चरम रूप को त्यागने की बात करते हैं। आसक्ति और निरासक्ति के बीच का रास्ता उन्हें स्वीकार हैं। यही गौतम बुद्ध का मध्यमार्ग है। सिद्धों की भाषा में इसे 'अमनसिकार' कहते हैं। मनस्कार का मतलब संसार के प्रति घोर आसक्ति है। 'अमनसिकार' अन्यमनस्कता है। संसार में होते हुए भी उससे निर्लिप्त रहना। सरहपा ने कहा कि विषयों में रमण करते हुए भी विषयों में लिप्त न हो जैसे उत्पल जल तरंगों पर विकसित होता है किन्तु जल से निर्लिप्त रहता है। सरह का अपना जीवन ही उनके सिद्धांत का साक्षी है। वे गृहस्थ है, स्वयं परिश्रम करके जीविका चलाते हैं। घर में भार्या के साथ रहते हुए परम तत्व पर चिंतन करते हैं। दूसरों को वे यही सीख भी देते हैं:

झाण-हीण पब्बज्जें रहिअउ। गही बसन्तें भाज्जे साहिअउ।

बाहरी टीम-टाम-ध्यान और प्रवज्या-साधु वेश से रहित भार्या सहित घर में रहिए। पूरे पांच सौ वर्ष बाद सरहपा के वैचारिक उत्तराधिकारी कबीर भी यह बात दुहराते देखे जा सकते हैं।

स्वाभाविक ही था कि सरहपा का दृष्टिकोण ऐहिक हो। सरहपा कहीं भी परलोक का भय नहीं दिखाते। उनमें रहस्य भावना तो है लेकिन संसार के प्रति वैराग्य भाव नहीं, निराशावाद नहीं। सेकुलर (इहलौकिक) सोच वाले किसी भी आधुनिक व्यक्ति के लिए सरहपा का यह कथन क्रांतिकारी लग सकता है:

जई जग पूरिअं सहजाणन्दे। णाच्चहु गाअहु विलसहु चंगे।

जग सहज आंनद से भरा हुआ है। नाचो, गाओ, अच्छी तरह विलास करो। (दोहा, 136) अन्यत्र वे कहते हैं कि जग में उत्पन्न होने से यदि दुख बहुत है तो सुख का सार भी वहीं है- जग उपपाअणे दुक्ख बहु, उप्पण्णउ तहिं सुख सार।। (वही, 103) वे कहीं भी मानव देह की भर्त्सना नहीं करते, उसे पाप-पंक में डूबी नरक की खान नहीं बताते। दोहा संख्या 96-97 में वे कहते हैं कि इसी देह के भीतर सारे तीर्थ हैं, क्षेत्र, पीठ, उपपीठ हैं। देह के समान तीर्थ न तो मैंने सुना न देखा

'देहा सरिस नित्थ, मइ सुणउ ण दिट्ठउ। '

सरह जैसे सिद्धों का उद्देश्य जन सामान्य को जागरूक बनाना था जिससे वह धर्म का धन्धा करने वालों के चंगुल में न फंसे। जनता को संबोधित कविता की भाषा स्वभावतः जनभाषा ही होगी। सरह नालन्दा विद्यापीठ के आचार्य थे। वे संस्कृत को अभिव्यक्ति का माध्यम बना सकते थे, पालि और प्राकृत भाषा में भी वे निणात रहे होंगे। लेकिन, उन्होंने अपभ्रंश को अपने विचारों, भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। अपभ्रंश अभी तक साहित्यिक भाषा के तौर पर स्वीकृत नहीं हुई थी। वह जनभाषा थी। उसके प्रति पंडितों के मन में तिरस्कार, उपहास का भाव था। जनता के सीधे संपर्क में, उनके बीच में रहने वाले सरह ने जनता की ही भाषा अपनाई। राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है, 'जिस प्रकार अपभ्रंश के रूप में एक नए प्रकार की अश्लिट भाषा इस समय हमारे सम्मुख उपस्थित होती है, उसी प्रकार दोहा, चौपाई, पद्धरी के नए छंद इसी समय हमारे साहित्य में देखे जाते हैं। ये छंद प्राकृत या दूसरी पूर्ववर्ती भाषाओं में नहीं मिलते। इन नए छंदों को पहिले-पहिल हम सरह की कृतियों में ही देखते हैं। इस प्रकार सरहपाद नई भाषा और नए छंदों के युग के आदि कवि हैं। इतना ही नहीं, सन्त-सिद्ध परंपरा के आदि-सिद्ध होकर वह आध्यात्मिक तौर से भी नई दिशा दिखलाने वाले हैं।' (हिंदी काव्यधारा, भूमिका, पृ.8-9)

7.6 जीवन-कर्म और आध्यात्मिक-साधना के बीच एकता का प्रतिपादन

शारीरिक श्रम को सिद्ध हीनकर्म नहीं मानते थे। श्रम के प्रति उनके मन में सम्मान था और इसलिए पवित्रता की उनकी धारणा ब्राह्मणवादी धारणा से भिन्न थी। वे उत्पादक श्रम से दूर चौकी पर बैठकर उपदेश नहीं देते थे। उनकी आध्यात्मिक साधना जीविकोपार्जन के लिए किए जाने वाले प्रयत्नों के साथ चलती थी। सरह बाण बनाते थे, तिलोपा तेली का व्यवसाय करते थे, मीनापा मछुआरे थे, धोम्भिपा धोबी, चमारिपा चर्मकार, तन्तिपा जुलाहे, कंथालीपा दर्जी, गुण्डरिपा शिकारी तथा पनह या उपानहपा जूते बनाने वाले कहे गए हैं। यह भी ध्यातव्य है कि ये सहजयानी सिद्ध बौद्ध परंपरा में थे और यह परंपरा अहिंसा पर विशेष बल देती है। सिद्धों के व्यवसाय को देखें तो उनमें मछुआरे भी मिलते हैं और शिकारी भी। आशय यह कि सिद्ध अहिंसा के आग्रह को अतिवाद में ले जाने के विरुद्ध थे और जीवन को उसकी सहजता में ही ग्रहण करते थे। स्वयं सिद्ध परंपरा के प्रवर्तक कहे जाने वाले सरह का काम बाण बनाना था और बाण का उपयोग कहाँ किया जा सकता है, बताने की जरूरत नहीं। सिद्धों ने चर्यापदों की रचना की है। इस चर्या का अर्थ जीवनचर्या से ही निकला है। अपने श्रम को सिद्ध अध्यात्मपरक अर्थ देते हैं। वे अध्यात्म और जीवनचर्या के बीच किसी भी प्रकार के भेद को मान्यता नहीं देते। कई शताब्दियों बाद निर्गुण संतों के यहाँ अध्यात्म के लिए सहजता से गृहस्थ जीवन का स्वीकार दिखायी पड़ता है।

7.7 करुणा पर विशेष बल

सिद्ध साहित्य नामक अपने शोध-प्रबंध में धर्मवीर भारती ने प्रश्न उठाया है कि जब सिद्धों को बौद्ध परंपरा से परम तत्व के लिए शून्य शब्द प्राप्त था तो उन्होंने उसी के समान अर्थ

वाला सहज शब्द क्यों व्यवहृत किया? क्या 'शून्य' उस परम तत्व के पूरे अर्थ को अभिव्यक्त नहीं कर सकता था? (सिद्ध साहित्य, ग्रंथावली, खण्ड-9, पृ. 148) भारती जी का उत्तर है कि शून्य सिद्धों द्वारा वांछित अर्थ नहीं दे रहा था। शून्यता ज्ञान या ख-सम-स्वभाव (ख-गगन) के अतिरिक्त करुणा तत्व की ओर सिद्धों का विशेष झुकाव था। दोहाकोश में सरहपा ने साफ-साफ कहा है कि शून्य तभी सार्थक होता है जब वह करुणा युक्त हो। करुणा रहित शून्यता के बिना करुणा अधूरी है। मात्र करुणा की भावना मोक्ष नहीं दे सकती। करुणा और शून्यता का सहभाव ही अभीष्ट है:

करुण-रहिअ ज्जो सुण्णहिं लग्गा। णउ सो पावइ उत्तिम मग्गा
अहवा करुणा केवल साहअ। सो जंमन्तरें मोक्ख ण पावअ

(दोह कोश-गीति, संख्या 17)

7.8 सिद्ध परंपरा में स्त्री और शूद्र

प्रायः यह कहकर भ्रम पैदा किया जाता है कि जाति-पाँति का खंडन उस समय के सभी तांत्रिक संप्रदायों की विशेषता थी और सिद्ध साहित्य में जाति-पाँति का खंडन मिलना कोई उल्लेखनीय बात नहीं है। यहाँ यह बात भुला दी जाती है कि वैष्णव व शैव तांत्रिक संप्रदायों में जाति-पाँति का खंडन ऊपरी तौर पर ही होता था। जाति-व्यवस्था के मूल स्रोत वर्ण-विधान पर उनकी मूक सहमति बनी रहती थी। सिद्ध बौद्ध परंपरा से थे। वर्ण व्यवस्था से उनका मुखर विरोध था और यह विरोध सैद्धांतिक था। अन्य तांत्रिक संप्रदायों में माना जाता था कि तांत्रिक साधना में प्रवृत्त होने के बाद साधक की कोई जाति नही रह जाती, साधना की परिसमाप्ति पर पुनः पूर्ववत् स्थिति आ जाती है। सिद्धों में ऐसा अवसरवाद नहीं था। चौरासी सिद्धों में अधिकांश सिद्ध शूद्र ही थे। वर्ण-जाति व्यवस्था को यह संप्रदाय सिरे से अस्वीकार करता था। आदि सिद्ध सरहपा का ब्राह्मणवाद पर तीखा आक्रमण इसका प्रमाण है। सरहपा 'जाति वर्ण लक्षणा' को 'सर्वभ्रामक लक्षणा' बताते हैं। (दोहा कोश, उपदेश गीति, 42,पृ. 113) चर्यागीति में वे वर्ण-भेद को बंधनकारी कहते हैं। जो इस बंधन की जीर्णता से अपरिचित है वह रत्नपरीक्षा न कर सकने वाला मूढ़ है। (चर्यागीति, संख्या 24) उनका यह भी कहना है कि 'नाना मिथ्या को सत्य एक विध्वंसै' (चर्यागीति, संचया 4)। हम चाहें तो 'नाना मिथ्या' को वर्ण-जाति के नियम मान सकते हैं। सरहपा का कहना है कि बंधन मुक्त के लिए ब्राह्मण शूद्र जैसी कोटियां अर्थहीन हैं:

जब्बें मण अत्थमणु जाइ, तणु तुट्टइ बन्धण।
तब्बें समरसहि मज्झे, णउ सुद्द ण बाम्हण।।

(दोहाकोश-गीति, संख्या 45)

सिद्ध-परंपरा में साधक के लिए साधिका की सहायता अनिवार्य ठहराई गई है। चौरासी सिद्धों की सूची में स्त्रियाँ भी हैं। प्रज्ञोपाय साधना सिद्ध-परंपरा की मूल भित्ति है। प्रज्ञा को नारी तथा उपाय को पुरुष कहते हैं। प्रज्ञोपाय का स्वरूप मिथुनपरक है। स्त्री और पुरुष का साथ स्वाभाविक है। यही 'सहज' भावना है। पति-पत्नी की गृहस्थी सिद्धों के लिए काम्य हैं। वे कहीं भी स्त्री के किसी रूप की निंदा करते नहीं दिखाई पड़ते। संत-परंपरा में स्त्री को साधना में बाधक माना गया । उसकी घनघोर निंदा हुई। सिद्ध सभी वर्णों की स्त्रियों के प्रति सम्मान का भाव रखते हैं। उनके अनुसार वे सब भगवती प्रज्ञा पारमिता की ही 'सम्वृत रूपाभिव्यक्ति' हैं। महामुद्रा के रूप में भगवती नैरात्मा परिकल्पित हैं। उनके कई नाम दिए गए हैं- योगिनी, शबरी, कपाली, डोम्बी, चांडाली। तत्कालीन समाज में इन नामों के प्रति घृणा का जो भाव रहा होगा उस भाव को नष्ट करने का प्रयास सिद्धों ने किया है। परवर्ती वैष्णव भक्ति में परकीया भाव को बहुत महत्व मिला है। सिद्धों में इसका

सर्वथा अभाव है। वे बराबर नायिका को गृहणी, वधू आदि शब्दों से अभिहित करते हैं। (धर्मवीर भारती, पृ. 201) उनका कहना है कि जैसे नमक पानी में घुल जाता है उसी प्रकार अपनी गृहणी को अपने चित्त में धारण करो। (वहीं, पृ.201) काण्हपा ने कहा कि निज गृहणी ही महामुद्रा है और महामुद्रा की साधना कर लेने वाला समस्त बाह्य अनुष्ठानों से मुक्त हो जाता है। तंत्र-मंत्र की फिर कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। निज गृहणी से प्रणयकेलि अर्थात् कमलकुलिश साधना करना ही पर्याप्त है।

7.9 सिद्ध परंपरा की सीमाएं

हर परंपरा में विकृतियां आती हैं। सिद्ध परंपरा इसका अपवाद नहीं है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तांत्रिक काल को दो भागों में बांटते हुए पहले काल का समय 8वीं से 10वीं शती का माना है। इस समय तंत्र संप्रदाय में उत्साह है, उदारता है, लोक धर्म के प्रति जागरूकता है। दूसरा काल 10वीं से 12वीं शती में एक शिथिलता आ जाती है। परंपराबद्धता, अनुष्ठान-बहुलता और चिंता पराधीनता आ जाती है। यह टीकाओं का काल है। (ग्रंथावली-5, पृ.9) इसी दूसरे काल में सिद्ध संप्रदाय विकृतियों का शिकार होता है। रामशरण शर्मा ने लिखा है कि सामाजिक वास्तविकताएं धार्मिक समानता से अधिक प्रबल होती हैं। 'नए संप्रदायों को भी सामंती शासक वर्ग के विचारों एवं संस्थाओं के सांचे में ही ढलना पड़ा'। (शर्मा, वहीं, पृ. 215) राहुल सांकृत्यायन ने सबसे पहले इस ओर ध्यान दिलाया था, आदिम सिद्ध कृत्रिम बहु-निर्बन्ध पूर्ण जीवन को सहज-जीवन का रूप देना चाहते थे। उनका उद्देश्य कभी नहीं था कि लोग सहज जीवन बिताने के लिए अंधेरी कोठरियों और 'गुह्य-समाजों' का आश्रय लें। वह इस बात में सफल नहीं हुए और उनका सहजयान भी सामन्त समाज का एक दूसरा कोढ़ बनकर रह गया।' (हिंदी काव्यधारा, पृ.47) परवर्ती सिद्ध संप्रदाय में गुह्य-साधना, तंत्र-मंत्र और तमाम तरह के अनाचार चल पड़े। उसकी छवि को गहरा धक्का लगा। उसका विद्रोही रूप लोगों की स्मृति से ओझल होने लगा। बाद में, संतों ने आदिम सिद्धों की बहुत सी सकारात्मक बातों को अपना लिया। सिद्ध-परंपरा को इसका यथोचित श्रेय भी नहीं मिला।

7.10 सारांश

ब्राह्मणवाद के प्रतिरोध का इतिहास उसके जितना ही पुराना है। इस प्रतिरोध की पुख्ता जमीन पर ही दलित चिंतन की आधारशिला रखी गई है। बौद्ध विचार दर्शन से विकसित सिद्ध परंपरा ने अपने ढंग से भेदभाव पर आधारित समाज व्यवस्था का विरोध किया और समतावादी समाज के पक्ष में आवाज उठाई। उनकी रचनाओं से शोषित-पीड़ित जनता के संघर्ष को निश्चित ही बल मिला। चौरासी सिद्धों में अधिकांश दलित जातियों से हैं। भारतीय धर्म-साधना के इतिहास को देखते हुए यह बात उल्लेखनीय और गौरवशाली लगती है। सिद्धों में एकाधिक स्त्रियां हैं और स्त्री के प्रति सिद्ध संप्रदाय का दृष्टिकोण निंदात्मक नहीं है। सिद्ध सहज या नैसर्गिक जीवन को ही महत्व देते हैं। उनकी रचनाओं में न तो भोग को सर्वोपरि माना गया है न वैराग्य को। मध्यम मार्ग ही अभीष्ट है। सिद्ध संप्रदाय ने जाति-विमर्श में एक नई चीज़ जोड़ी-अवजातीकरण। तथाकथित उच्च वर्णेजाति के लोगों ने निम्नवर्णेजाति में आकर जाति-वर्ण व्यवस्था की 'दिव्यता' को सशक्त चुनौती दी। सिद्ध संप्रदाय में अंततः कुछ विकृतियां आई लेकिन इसकी मूलभूत मान्यताओं की प्रासंगिकता हमेशा बनी रही। परवर्ती संत परंपरा पर इनका पर्याप्त असर पड़ा।

इकाई 8 महानुभाव पंथ

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 महानुभाव पंथ के संस्थापक : चक्रधर स्वामी

8.3 महानुभाव पंथ का उद्भव एवं विकास

8.3.1 महानुभाव पंथ का दर्शन

8.4. समता के प्रचारक चक्रधर स्वामी

8.4.1 वैदिक श्रुति–स्मृति ग्रंथों से असहमति

8.4.2 धर्म की अराजकता का विरोध

8.5 महानुभाव पंथ का आचार-व्यवहार

8.6 महानुभाव पंथ के प्रमुख सात विचार–ग्रंथ

8.7 महानुभाव पंथ के चरित्र ग्रंथ

8.8 सारांश

8.0 उद्देश्य

दलित साहित्यःविशेष अध्ययन के मोडयूल का पहला पाठयक्रम 'भारत की चिंतन परंपराएँ और दलित साहित्य' के दूसरे खंड की चौथी और पाठयक्रम की आठवीं इकाई 'महानुभाव पंथ' के दर्शन पर आधारित है।

बारहवीं शताब्दी में महाराष्ट्र में महानुभाव पंथ का उदय हुआ जिसके संस्थापक चक्रधर स्वामि थे। महानुभाव पंथ का महाराष्ट्र के भक्ति साहित्य तथा मराठी भाषा के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। महानुभाव पंथ का महत्व इसलिए भी है कि इसने बौद्ध दर्शन जैन धर्म दर्शन लोकायत दर्शन, सिद्ध–नाथों एवं संतों के परिवर्तनवादी दर्शन–विचारों को क्रांति के अगले पड़ाव के रूप में बढ़ाया तथा मानव प्रतिष्ठा, समता और स्वाधीनता को केन्द्र में रखकर विचारों का प्रवर्तन किया। जिस धर्म की स्थापना इन विचारधाराओं द्वारा की गई थी वह जनसाधारण से जुड़ा लोकधर्म था, जिसके इर्द गिर्द जन सामान्य की आशा–आकांक्षाएं, सुख–दुख–दर्द और संघर्ष जुड़े हुए थे।

वह न केवल उनमें जीवन के प्रति आस्था जगाता है बल्कि संकट की घड़ी में उनका मनोबल ऊँचा रखता है। उन्हें अधिक मानवीय और उदार बनाता है। आपसी प्रेम एवं भाईचारा उत्पन्न करके व्यक्ति को उनकी सामाजिक जिम्मेदारी से भी अवगत कराता है। इसी सकारात्मक सोच के कारण जनसाधारण द्वारा एवं अपनाए जाने में आकर्षक लगने वाला धर्म लोकधर्म है।

सत्ताश्रयी धर्म लोकधर्म के विपरीत धर्म है जो यथास्थितिवाद में विश्वास करता है तथा परिवर्तन विरोधी है। इसकी भूमिका भी शोषक वर्गों के हितों की रक्षा करने तथा विद्रोह को दबाने में सक्रीय रहती हैं। राजसत्ता के हित में कार्यरत यह धर्म अपने वास्तविक

स्वरूप, प्रकृति और उद्देश्य से हटकर राजसत्ता के हाथ की कठपुतली बनकर रह जाता है। जनसाधारण के हितों के विपरीत भूमिका का निर्वाह करने वाला यह सत्ताश्रयी धर्म हमेशा लोकधर्म से टकराव की स्थिति में रहता है। इसका सबसे बेहतर उदाहरण भक्ति आन्दोलन है। सत्ता के विरोध में, यथास्थितिवादी पुरोहित वर्ग द्वारा फैलाए गए सामंतवादी और कट्टरतावादी कर्मकांडी धार्मिक अनुष्ठानों आदि के विरोध में प्रखर विरोध के स्वर लोकधर्मी पंथ एवं संप्रदायों द्वारा उठाए गए थे। भक्ति आंदोलन द्वारा आगे भी कबीर, दादू, रैदास, जायसी आदि ने जाति–पाति, वर्णव्यवस्था, धार्मिक संकीर्णता के विरोध में तीव्र आन्दोलन छेड़ा था।

इसी प्रकार महाराष्ट्र में बारहवी शताब्दी में चक्रधरस्वामी ने 'महानुभाव पंथ' की स्थापना करके धार्मिक संकीर्णता वर्ण–जाति व्यवस्था और कर्मकांड का विरोध किया था। चक्रधरस्वामी ने प्रखर विरोध की प्रणाली को न अपनाते हुए अतीशय प्रेमपूर्वक सौम्य शब्दों में परंतु तर्कनिष्ठ विचारों द्वारा विषमता को फैलाने वाली वैदिक धर्मीय कट्टरता के विरोध का अभियान चलाया। महानुभाव पंथ के दर्शन तथा उसके साधकों के समक्ष किसी भी जाति या कुल का होने पर भी ज्ञान प्राप्ति का अधिकार तथा आराध्य की आराधना का प्रत्येक को अधिकारी होने का संदेश फैलाने का महान उद्देश्य रहा है। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आपः

- चक्रधर स्वामी द्वारा 'महानुभाव पंथ' की स्थापना के उद्देश्य से परिचित हो सकेंगे;
- 'महानुभाव पंथ' ने बुद्ध चिंतन परंपरा, लोकायत परंपरा, सिद्ध–नाथ परंपरा की विचारधारा को प्रेषित करने का सफल प्रयास किया है, इस तथ्य को रेखांकित कर सकेंगे;
- लोक धर्म के रूप में प्रचारित–प्रसारित इस पंथ के मानवीय तथा उदार दर्शन से परिचित हो सकेंगे;
- धार्मिक कर्मकांड, जाति–पाति की विषमतावादी प्रथा और नारी के अधिकारों के हनन का विरोध करके एक समतावादी समाज निर्मिति के महाप्रयास से भी अवगत हो सकेंगे;
- सबसे अधिक संख्या में नारी साधकों ने महानुभाव संप्रदाय में दीक्षित होकर संप्रदाय के प्रचार प्रसार में दिए योगदान को जान सकेंगे;
- सगुण भक्ति को अपनाकर प्रगतिशील विचार प्रवर्तन के सकारात्मक प्रयास को जानने का अवसर प्राप्त कर सकेंगे;
- बारहवीं शताब्दी में सामाजिक संरचना के विकृत रूप को सुधारकर जनसामान्य के दुख–दर्द, आशा–आकांक्षा और संघर्ष से सीधे जुड़ने के लोकधर्मी प्रयास को रंखांकित कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

सिद्ध और नाथ संप्रदायों के प्रभाव को ग्रहण करके स्थापित हुए महानुभाव पंथ और वारकरी पंथ बौद्ध दर्शन और विचारों के प्रवर्तन का अगला चरण है। कन्नड़, मराठी और संस्कृत भाषा के विद्वान शं. बा. जोशी 'मराठी संस्कृतः कुछ समस्याएं' ग्रंथ में कहते हैं कि "बौद्ध धर्म के वज्रयान शाखा से उद्भूत सिद्ध परंपरा का प्रचार–प्रसार महाराष्ट्र और कर्नाटक में साथ–साथ पहुँचा था। इसके विकल्प के रूप में कर्नाटक में वीरशैव पंथ तथा महाराष्ट्र में महानुभाव और वारकरी पंथ की निर्मिति हुई है।" बौद्ध परंपरा के अगले

विकसित चरण के रूप में महानुभाव पंथ पर विचार करते समय इसके दर्शन को सहज रूप से जानने का प्रयास हमें इस इकाई के द्वारा करना है।

प्राचीन भारतीय परंपरा वैदिक परंपरा अर्थात् ब्राह्मणवाद से प्रभावित परंपरा रही हैं। वैदिक परंपरा में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था, जाति प्रथा पर विश्वास के कारण समाज में श्रेष्ठ और कनिष्ठता को ईश्वर निर्मित व्यवस्था के रूप में मान्यता प्राप्त थी। वैदिकों ने ईश्वर के अलौकिक रूप, में मान्यता प्राप्त थी। वैदिकों ने ईश्वर के अलौकिक रूप, धर्म की कट्टरता, जाति भेद की सामाजिक संरचना तथा शास्त्रनिहाय विचार दर्शन पर विश्वास करने की एक सोची समझी चाल चली थी। जिसे भय के कारण और तर्कनिष्ठता के अभाव में जनसामान्य ने बिना प्रश्न किए स्वीकृति दे दी थी। पूर्वजन्म, कर्मफल और भाग्यवाद जैसे अतार्किक सिद्धांतों के विरोध में अज्ञानी दलित शोषित जन किसी भी प्रकार से ब्राह्मणवाद का विरोध न कर पाए। बौद्ध धर्म ने अपने तर्क और विज्ञानवादी दृश्टि से इन वैदिकों की इस साजिश का पर्दाफाश कर दिया था। जनसामान्य ने समताधिष्टित समाज निर्मिति के इस दर्शन का स्वागत करके हजारों वर्श तक बुद्ध दर्शन और धम्म का भारत में अस्तित्व रहा। धार्मिक गुलामी से मुक्ति देनेवाला समता, स्वाधीनता मैत्रीभाव, हिंसा, करूणा और शांति की स्थापना करने वाले बौद्ध धम्म ने मानवीय मूल्यों पर समाज की निर्मित की। संस्कृत भाषा के वर्चस्व से धर्म को मुक्त करके गौतम बुद्ध ने जनसामान्य की भाषा प्राकृत–पाली भाषा में ज्ञान एवं दर्शन का प्रवर्तन किया। ज्ञान के दरवाजे सभी के लिए खोल दिए गए, भिक्षुणी संघ की स्थापना करके स्त्रियों के लिए सदियों से बंद ज्ञान एवं मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। इस दर्शन को सिद्धों के बाद महानुभावों ने स्वीकार करके समता के मूल्य की स्थापना का जोरदार प्रयास किया। हम यह कह सकते हैं कि महानुभाव पंथ का सीधा प्रभाव बाद के समय में प्रगतिशील, मानवीय मूल्य विकसित होने में सहायक रहा है।

8.2 महानुभाव पंथ के संस्थापक : चक्रधर स्वामी

महानुभाव पंथ के संस्थापक के चक्रधर का पुराना नाम हरपाल देव है और इनका जन्म ई.स. 1194 साल में हुआ है ऐसा माना जाता है। उनका जन्मस्थान गुजरात क्षेत्र का भडौंच है। महानुभाव पंथ में पाँचकृष्ण याने कृष्ण के पाँच अवतार माने जाते हैं। उसमें से पाँचवा अवतार याने चक्रधर को माना जाता है। गुजरात के भडौंच क्षेत्र में मलदेव नामक राजा का राज था। राजा का प्रधान विशाल देव था। मलदेव को पुत्र नहीं होने के कारण उन्होंने अपना राज्य विशाल देव याने अपने प्रधान को दिया। प्रधान विशाल देव की पत्नी माल्हण देवी का पुत्र हरपालदेव यही हरपालदेव आगे चक्रधर नाम से परिचित हुआ और उन्होंने महानुभाव पंथ की स्थापना की।

चक्रधर शुरुआत में राजपुत्र होने के कारण अनेक विद्या के धनी थे। वेद, उपनिषद, गीता और तांत्रिक ग्रंथों का उनका अभ्यास था। साथ ही अश्वविद्या, शस्त्रविद्या, शिल्पविद्या, कृषिविद्याएं उनको हासिल थीं। जब सिंघल यादवों ने गुजरात पर हमला किया तब हरपाल देव ने युद्ध भूमि पर अपने पराक्रम से शत्रुपक्ष का पराभव किया था।

हरपाल देव या चक्रधर की शादी कमकाईसा के साथ हुई थी। एकांत स्वभाव के हरपाल देव ने संतान के जन्म पश्चात् घर–बार त्याग किया। त्याग का कारण ज्ञात होता है कि चक्रधर द्यूत में हार गए, जुए में हारने से लिए हुए ऋण को वापस करने हेतु उन्होंने अपने पत्नी के गहने मांगे, पत्नी ने गहने देने से इंकार किया। इस कारण व्यथित होकर उन्होंने हमेशा के लिए घर छोड़ दिया। हरपाल देव को चक्रधर यह नाम श्री गोविंद प्रभु ने दिया।

हरपाल और गोविंद प्रभु की मुलाकात ऋद्धिपूर में हुई थी। उसी समय श्री गोविंद प्रभु ने उनका नामकरण चक्रधर किया। चक्रधर ने आगे कुछ साल मौन अवस्था धारण करके तपस्या में बिताए।

कुछ समय पश्चात् उनकी मुलाकात योगिनी मुक्ताबाई से हुयी। चक्रधर सालबर्डी के जंगलों में स्थित पांडवों की गुफा कही जानेवाली गुफा में निवास करते थे। वन्य प्राणियों से घिरे इस जंगल में ही गोरखनाथ की शिष्या योगिनी मुक्ताबाई अपनी कुटिया बनाकर रहती थी। जब उन्हें चक्रधर के मंदिर में निवास करने की खबर मिली तो वे उनसे मिलने गई। उन्हें देखते ही नतमस्तक होकर उन्हें प्रणाम करके मुक्ताबाई ने उन्हें अपनी कुटिया में चलकर अन्न ग्रहण करने का आग्रह किया। चक्रधर उनके साथ कुटिया में पधारे, जहाँ उनकी वनपुष्पों से आराधना करके उन्हें फलाहार करवाया। वह कहती है स्वामिजी मुझे अपने तप का फल मिल गया। आपके दर्शन से मेरी साधना पूर्ण हो गई। विरक्त अवस्था में भटकने वाले चक्रधर ने बारंगल क्षेत्र के एक व्यापारी के लड़की से शादी करने का जिक्र आता है। आगे अवधूत के दर्शन से उन्हें वैराग्य प्राप्त हुआ। पैठन क्षेत्र में उन्हें दत्तात्रे का साथ मिला और उन्होंने संन्यासी की दीक्षा ली। आठ–नौ साल महानुभाव पंथ के प्रचारार्थ बिताये। शुरुआत में उन्हें रामदेव एवं दादोस, वोगाई, नागुबाई एवं बाईसा जैसे शिष्य शिष्याएं मिले किन्तु कुछ समय बाद उनके शिष्यगणों की संख्या पाँच सौ हो गई, उसमें तेरह महिलाएं थीं। साथ ही इन शिष्यों में रामदेव उद्‌भट, नाथोबा, म्हाइंभट और सारंगपंडित जैसे विद्वान पंडित थे। इस कारण चक्रधर के महानुभाव पंथ का प्रचार बढ़ता गया। यादव राजाओं ने इस पंथ का विरोध था क्योंकि पंथ के संस्थापक चक्रधर की लोकप्रियता के कारण राजा की प्रतिष्ठा कम हो रही थी। इसलिए इस पंथ को समाप्त करने के उद्‌देश्य से चक्रधर पर दो बार विश का प्रयोग किया गया और आखिरकार उनकी हत्या ही कर दी गयी। बेलापुर तालाब पर उनकी हत्या की गयी थी, सर और शरीर अलग–अलग किया, किन्तु पुनः पुनः वे एक हो जाते थे। उनकी मृत्यु के बारे में निम्न पद मशहूर हैं। 'उत्तरापंथ बीजे केले' महानुभाव पंथ में इसे अत्यंत श्रद्धापूर्वक सुनाया जाता है।

8.3 महानुभाव पंथ का उद्‌भव एवं विकास

जीव जगत, ईश्वर और आत्मा के शाश्वत होने के शंकराचार्य के सिद्धांत को महानुभाव पंथ नकारता है। उनके अनुसार प्रत्येक अणु में हर क्षण बदलाव होता है, जो अभी अस्तित्व में है, दूसरे क्षण वह वस्तु उसी रूप में नहीं रहकर उसमें नीत्य परिवर्तन होता रहता है। अतः ईश्वर और आत्मा के चीरकाल अस्तित्व का वे विरोध करते हैं। पाँच तत्वों के एकत्रीकरण से जिस शरीर की निर्मिति होती है वह हर क्षण बदलता है। बचपन में जो आकृति दृष्टिगत होती है। वहीं युवावस्था या वृद्धावस्था में नहीं रहेगी। आत्मा और ईश्वर के सिद्धांत को महानुभाव पंथ स्वीकार नहीं करता, इसके लिए सैद्धांतिक आधार प्रस्तुत करते हैं। इसी के आधार पर चातुर्वर्ण्य व्यवस्था, जातिप्रथा, ऊँच–निम्न के भेदभाव को वे मान्यता नहीं देते। समता के तत्व का प्रसार–प्रचार करने के पीछे उनका यही तर्क हमें दिखाई देता है। जीवन में यदि सुख की खोज करना है तो सभी को एकता के सूत्र में बंधकर समता के मूल्य को अपनाने की बात महानुभावों ने की है। तत्वतः बौद्ध दर्शन का ही विस्तार उन्होंने मराठी भाषा में जो कि सामान्यों की भाषा थी, में किया, जिससे ज्ञान के विचार को ग्रहण करके व्यवहार में उतारना अधिक सरल एवं सहज हो जाता है।

8.3.1 महानुभाव पंथ का दर्शन

महानुभाव पंथ का दर्शनविषयक कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है। किन्तु चक्रधर की लीलाओं का वर्णन करने वाले दोहों का संकलन करते समय कुछ दोहों में दर्शन बताने वाले कुछ दोहे मिलते हैं। उन दोहों का ग्रंथ 'सूत्रपाठ' नाम से प्रसिद्ध है। यह ग्रंथ मान्य महानुभाव पंथ का दर्शनात्मक ग्रंथ है। यह पंथ विचारों का प्रवर्तन करने वाला पंथ है। शंकराचार्य के विचारों में जिसको अंतिम सत्य माना गया वह इस पंथ को मान्य नहीं है।

महानुभाव पंथ के दर्शन ग्रंथ के रूप में चक्रधर का चरित्रग्रंथ 'लीलाचरित्र' प्रमाण के रूप में मान्य हैं। पंडित महिंद्रभट्ट द्वारा रचित यह ग्रंथ चक्रधर की दैनंदिनी के रूप में उनके द्वारा कहे गए वचन, अमोघ वक्तृत्व तथा दार्शनिक विचारों को उनके ही समकालीन और शिष्य महिंद्रभट्ट ने यथावत् लिखने का सफल प्रयास किया। चक्रधर द्वारा समय–समय पर शिष्यगणों को दिए उपदेश, समाज में समता का विचार प्रवर्तन करने का आदेश तथा समता के मूल्य को सबसे प्रथम स्वयं के व्यवहार में उतारने के प्रति आग्रह, उनके द्वारा प्रस्तुत मोक्ष प्राप्ति का विचारसूत्र प्राचीनतम बौद्ध दर्शन से निकटता दर्शाता है।

शंकराचार्य के अद्वैत विचार दर्शन का उन्होंने स्पष्ट रूप से नकारा है। धर्म के नाम पर फैले आडंबर, अंधविश्वास यज्ञ में पशुबलि तथा सनातन धर्म की कट्टरता के वे घोर विरोधी रहे। तत्कालीन समाज में उपजी विकृतियों को सुधारने के लिए उन्होंने सामाजिक–धार्मिक सुधार के लिए धैर्यपूर्वक अथक प्रयास किए। मानव जीवन के कल्याण हेतु उन्होंने दर्शाया मार्ग मोक्ष प्राप्ति का जरूर है लेकिन वह वैदिकों के आडंबर युक्त मार्ग से हटकर सहज, सरल भक्ति का मार्ग अपनाने के सामाजिक प्रबोधन किया।

सामाजिक प्रबोधन द्वारा जनता के विचारों में परिवर्तन लाने का प्रयास बुद्ध के अनुयायि द्वारा संघ के मार्ग का अनुसरण किए जाने के समिप है। अहिंसा के तत्व के प्रसार–प्रचार हेतु चक्रधर ने संपूर्ण महाराष्ट्र में भ्रमण किया। गांव–गांव जाकर वे जन सभाओं को संबोधित करते और समता के मूल्य को अपनाने, अहिंसा का मार्ग स्वीकारने तथा आपसी भाईचारा और मोक्ष प्राप्ति का सहज मार्ग स्वीकारने का आग्रह करते।

8.4 समता के प्रचारक चक्रधर स्वामी

चक्रधर स्वामी का मराठी के प्रति प्रेम अतुलनीय था, संस्कृत भाषा सामान्य जन की भाषा नहीं थी अपितु ज्ञान का प्रचार–प्रसार का माध्यम यद्यपि संस्कृत ही था जिसे वैदिकों ने देवभाषा घोषित करके पोथियों में बंद कर दिया था। चक्रधर स्वामी ने अपना प्रवचन और विचार प्रवर्तन मराठी भाषा में किया। यह पहला अवसर था जब मराठी को ज्ञान और विचार के प्रसार प्रचार हेतु उपयोग में लाने का सफल प्रयास किया गया। इसी परिपाटी के चलते आगे सात सौं वर्षों में मराठी भाषा में विविध विधाओं में साहित्य रचनाएं लिखी गई। व्याकरण और छंदशास्त्र के ग्रंथ, काव्य, गद्य तथा शब्दकोश भी मराठी में निर्मित होने का श्रेय महानुभाव पंथ को ही दिया जाना चाहिए। महानुभाव पंथ के संस्थापक श्रीचक्रधर स्वामी इसके जनक माने गए हैं।

महाराष्ट्र में बारहवीं शताब्दी में चक्रधर के समय में क्रमशः सिंघनदेव यादव, कन्हरदेव यादव, महादेवराव यादव, आमणदेव यादव तथा रामदेव यादव का शासन था। इसी समय में चक्रधर स्वामी ने सामान्य जनों के बीच परिवर्तनवादी धर्ममत का प्रचार–प्रसार किया। समाज व्यवस्था पूर्णरूप से धर्म के अधीन थी, धर्म द्वारा निश्चित कानूनों का पालन करना अनिवार्य था। मनुस्मृति ही उस समय की सामाजिक व्यवस्था की आचारसंहिता थी। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का पालन कट्टरता से किया जाता। शूद्र को तीनों वर्णों की सेवा करने

का आदेश था। शूद्रों और अतिशूद्रों के श्रम पर, ब्राह्मण वर्ग (द्विज) शानो शौकत का जीवन व्यतित करने की परिपाटी बनी हुई थी। शूद्र–अतिशूद्रों के श्रम से बनी वस्तुओं से छूत नहीं होती परंतु कारीगर शिल्पी वर्ग से नफरत और छुआछूत बरती जाती थी।

छुआछूत एक ऐसी सामाजिक प्रथा है जो इंसान को मात्र कमतर ही नहीं मानती बल्कि उसे अपवित्र मानकर घृणा की जाती है। चातुर्वर्ण्य प्रथा के अनुसार अछूत की स्थिति तो जन्मना ही तय की जाती है। उन्हें हीनतम मानव मानकर उनके उपर अत्याचार–अन्याय का सिलसिला राजा सिंधनदेव से रामदेव यादवों के शासन में अपने चरम पर पहुँचा था। मंदिर प्रवेश, पूजा–अर्चना तथा भक्ति करने का अधिकार उनसे छीना जा चुका था। धर्म के दरवाजे उनके लिए बंद कर दिए गए थे। पुरोहित ब्राह्मण वर्ग द्वारा दिए गए निर्देशों के पालन में कोताही होने पर प्राणदंड तक की सजाएं दी जाती। ऐसे समय में चक्रधरस्वामी ने धर्म तथा भक्ति का मार्ग सभी वंचित दलित–शूद्रों के लिए खुला कर दिया और तर्क के आधार पर उन्होंने ब्राह्मणवाद की कट्टरता का विरोध किया ।

जिसे बहुजन जनता बहुत आसानी से समझ सकी। जातिपाती के भेदभाव के विचार को छोड़ने और समता के विचार को अपनाने का वे आग्रह करते हैं। सहज सुगम मराठी में उनका यह पद इसकी मिसाल है।

'उत्तम भणिजे ब्राह्मण। आन अधम भणिजे मातंग।
ऐसे म्हणे परि तोही मनुष्य देहची। परिव था कल्पना करी।'

इन परिवर्तनवादी विचारों को कृति में उतारने के लिए उनके शिष्यों को वे प्रेमपूर्वक बताते कि

'महारवाडयाहोनि धर्म काढावा' 'घर न निवडीता भिक्षा कीजे'

अर्थात महार (अछूत) बस्ती में भी धर्म का प्रचार करो, तथा भिक्षा माँगते समय घर का चुनाव नहीं करेंगे। महाराष्ट्र में उस समय में शायद ही अपनी कृति में इतना प्रगतिशील विचार रखने वाला कोई अन्य धर्म अस्तित्व में रहा होगा।

8.4.1 वैदिक श्रुति–स्मृति ग्रंथों से असहमति

चक्रधर के समय में अनेक धर्म प्रचलन में थे जिनमें प्रमुख रूप से शंकराचार्य का वैदिक धर्म और रामानुजाचार्य का धर्ममत जो मूलतः द्वैतवाद को मान्यता देता था। इन परस्पर विरोधी धर्ममतों को लेकर आपसी विवाद था। वल्लभाचार्य और रामानुजाचार्य द्वारा शंकराचार्य के मत की नित्य आलोचना की जाती थी। दोनों ही मतावलंबी परस्पर आलोचना के लिए गीता, उपनिषद और ब्रह्मसूत्रों का ही सहारा लेते रहे। इससे दोनों धर्मावलंबियों के बीच संभ्रम फैला हुआ था। स्मृतियों में संन्यासियों के लिए 'चातुर्वर्ण्यात चरेत भिक्षम्' अर्थात् भिक्षा माँगकर ही अपनी उपजीविका चलाने की आज्ञा दी गई है तो दूसरी ओर अस्पृश्यों के स्पर्श से भी बचने का आदेश दिया गया है तथा इन आदेशों का अस्पृश्यों द्वारा उल्लंघन किए जाने पर उन्हें दंडित किया जाता। इस प्रकार के दोहरे मापदंडों पर चलने वाले धर्म ग्रंथों ने लोकमानस को संभ्रम में डाल दिया था। इस स्थिति से जनसामान्य को सही मार्ग दिखाने में श्रीचक्रधर स्वामि का योगदान अवर्णनीय है। वे अपने शिष्यों से कहते हैं कि 'सकल सामुग्री परित्यजूनी एशचिया व्युत्पत्ती व्युत्पन्ना होवावे।' अर्थात् 'परस्पर विरोधी विचार सामग्री को छोड़ दे और जैसा मैंने कहा है वैसी उच्च विचार और आचरण पद्धती स्वीकारे।' उन्होंने अपने शिष्यों को केवल उसे ही अपनाने के लिए कहा जो प्रामाणिक तथ्यों पर आधारित है। प्रमाणभूत सत्य को अपनाने का उपदेश बुद्ध ने भी किया था, अपने विवेक के अनुसार विचार अथवा मार्ग अपनाने का

संदेश बुद्ध ने ई.पूर्व छठी शती में ही प्रवर्तित किया था। चक्रधरस्वामि उसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए अपने शिष्यों को विवेक के इस्तेमाल का उपदेश करते हैं। स्पष्टतः वे वेदप्रामाण्य और परंपरागत स्मृतियों के प्रमाण को नकारने की ही बात कहते हैं। उनका विश्वास था कि इसे अपनाने से धर्मक्षेत्र में व्याप्त संभ्रम की स्थिति बदलकर धर्मक्षेत्र में एक सुसंगत विचार अपनाया जा सकेगा। यदि चक्रधरस्वामि के विचारों को उस समय के महाराष्ट्र क्षेत्र में सात शतकों पहले अपनाकर व्यवहार में उतारा जाता तो बाद के समय में तमाम संतों द्वारा किए गए सामाजिक समता स्थापित करने के प्रयास सफल हो जाते। आज के समय में स्थित सामाजिक विषमता, कनिष्ठ–वरिष्ठ का भेदभाव शायद अब तक नामशेष हो गया होता।

8.4.2 धर्म की अराजकता का विरोध

बारहवीं शताब्दी में धर्म का क्षेत्र धार्मिक आडंबर, यज्ञ–याग, पशुहिंसा, बहुदेववाद में लिप्त हो चूका था। हिंसा प्रधान धर्म का पालन वैश्य–शूद्रों एवं बहुजनों द्वारा बड़े पैमाने पर हो रहा था सुख की कामना में देवताओं को हजारों की संख्या में पशुओं की बलि दी जाती थी। धर्म के आवरण में अनेक तांत्रिक अनुष्ठानों का जन्म हुआ जिससे ऐसी संस्कृति का फैलाव हो चूका था कि चारों ओर पुरोहित, चतुर भोंदू साधुओं का तांत्रिकों का बोलबाला हो चुका था। भोली–भाली जनता इन लुटेरों के हाथों लुटते जा रही थी। इस धार्मिक अस्थिरता ने जनसामान्य दिग्भ्रमित हो चुका था और समाज दिशांहीन हो रहा था।

8.5 महानुभाव पंथ का आचार-व्यवहार

महानुभाव पंथ ने अपना दर्शन वास्तव में लाने हेतु व्यावहारिक दर्शन प्रणाली का प्रयोग किया। उसे ही आचरण धर्म ऐसा नाम दिया। यह पंथ संन्यास और सेवा निवृत्तिवाद को मानने वाला होने के कारण, अहिंसा, निःसग, भक्तियोग, सेवानिवृत्ति इन सूत्रों के दो वर्ग की कल्पना करके कड़े आचरण धर्म का अनुसरण करना बंधनकारक किया। संन्यासियों ने भ्रमण, शिक्षा, भोजन, एकान्तवाद, ईश्वर के अधीन होकर इन्द्रियों पर नियंत्रण करना, स्त्री का दर्शन न करना, ज्ञानी को महत्व देना, भिक्षा मांगने हेतु घरों का चुनाव न करना, काम, क्रोध, लालच टालना इन संबंध में महानुभाव पंथ अग्रसर हैं। यज्ञ, देवता भक्ति और उपवास एवं कर्मकांड का विरोध करके, श्रेष्ठ-कनिष्ठ छुआछूत नकार कर, जातिभेद, वर्णभेद को नकारा है। 'सर्वश्रेष्ठ' याने ब्राह्मण और निराला माने मातंगः किन्तु यह दोनों मनुष्य हैं। ऐसे समतावादी विचारों को महानुभाव पंथ ने स्थान दिया। इतना ही नहीं तो साधु ने चारों वर्ण के घर भिक्षा मांगना अनिवार्य बताया। महानुभाव पंथ में स्त्री और शूद्रों को मुक्त प्रवेश दिया। साथ ही पंथ का दर्शन लोकभाषा मराठी में रखने के कारण इसका प्रचार महाराष्ट्र के बाहर गुजरात, आंध्र और कर्नाटक में भी हुआ।

8.6 महानुभाव पंथ के प्रमुख सात विचार–ग्रंथ

महानुभाव पंथ के वाङ्मय के कुल पांच क्षेत्र हैं। पहले क्षेत्र को श्रुति कहा जाता है, जिसमें महानुभाव पंथ ने कृष्ण, दत्तात्रेय, चांगदेव राऊल (चक्रपानी), गुंडम राऊल (गोविन्द प्रभु) और चक्रधर ऐसे पाँच कृष्ण को माना है। इसमें उनका चरित्र, स्मृतियाँ एवं कथनों का संकलन निहित है। दूसरा भाग स्मृतियों का है, जिसमें चक्रधर के बाद महानुभाव पंथ का कार्य संभालने वाले नागदेवाचार्य के संदर्भ एवं उनके कार्य का विचार करने वाली घटनाओं का जिक्र है। नागदेवचार्य के बाद परशुरामचार्य ने महानुभाव पंथ का कार्य किया उनके संदर्भ में लेखन वृद्धाचार इस तीसरे क्षेत्र में है। परशुरामचार्य के बाद महानुभाव पंथ का

प्रचार-प्रसार का कार्य गुर्जर शिवव्यास, न्यासबास्त बांदेकर, भीमाचार्य, लातूरकर आदि ने किया इनके संदर्भ में ग्रन्थ लेखन चौथे क्षेत्र में मार्गरुढ़ि इन नाम से जाना जाता है। तो पाँचवें क्षेत्र में वर्तमान इस स्तंभ में इनके बताए कार्य करने वालों का विश्लेषण आता है।

महानुभाव पंथ का उदय बारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में हुआ है, और पंथ की स्थापना से आगे के सौ वर्ष में लिए गए ग्रंथ को महत्व है। ऐसे ग्रंथों में से महानुभाव पंथ में प्रमाणित किए गए ग्रंथों की संख्या सात है। इन ग्रंथों में काव्यग्रंथ भी है। इन सात ग्रंथों को महानुभाव पंथ में महत्त्व होने का प्रमुख कारण इन ग्रंथों के लेखन के पीछे की मूल प्रेरणा श्रीकृष्ण की भक्ति है। इन सातों ग्रंथ के रचना कार्य के संदर्भ में विद्वानों में मतभिन्नता है। पंथ के स्थापना से आगे सौ वर्षों में इन ग्रंथों के लिखने से इन सातों ग्रंथ का निर्माण सामान्यतया ई. स. 1275 से 1375 के दौरान माना जाता है। इन सात ग्रंथों में शिशुपाल वध, एकादशस्कंद दोनों के लेखक भास्करभट बोरीकर है। वछाहरण के लेखक दामोदर पंडित, रूक्मिणीस्वयंर के लेखक नरेंद्र, सहसाद्रिवर्णन के लेखक रवलो उर्फ राधो व्यास, ज्ञानप्रबोध के लेखक पंडित, विश्वनाथ, ऋद्धिपूरवर्णन के लेखक नारायण पंडित एवं नारों व्यास आदि का समावेश है।

महानुभाव पंथ के सातों ग्रंथों का मराठी भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। इन ग्रंथों का निर्माण मुख्यतः पंथ का दर्शन एवं आचरण धर्म बताने हेतु होने के बावजूद यह ग्रंथ समकालीन समाज एवं संस्कृति को समझने हेतु महत्वपूर्ण माने गये हैं। यह ग्रंथ गद्य एवं काव्य इन दोनों रूपों के हैं। महानुभाव पंथ का दर्शन बताने हेतु गद्य ग्रंथों का निर्माण किया गया तो श्री कृष्ण की कथा कहने हेतु काव्य ग्रंथों का निर्माण किया गया है। महानुभाव पंथों पर की गई श्रद्धा और निष्ठा व्याप्त करने हेतु ही ये ग्रंथ लिखे गए हैं। साथ ही पंथ के संस्थापक, प्रवर्तकों के चरित्र, उनके कथनों का संकलन, उन पर की गयी आलोचना, क्षेत्र की एवं भक्ति के कार्य के वर्णन हेतु स्रोत्र एवं काव्य का निर्माण किया गया है। महत्वपूर्ण है कि सभी ग्रंथकार जाने माने पंडित और प्रतिभाशाली कवि हैं।

1. शिशुपाल वध : भास्करभट बोरीकर

यह ग्रंथ 1987 दोहों का है। इस ग्रंथ के प्रारंभ में श्रीकृष्ण, दत्त, चक्रधर, इनको प्रणाम किया गया है। श्रीकृष्ण और रूक्मिणी के प्रेम विरह या ऐश्वर्य का विश्लेषण करना इस ग्रंथ का मुख्य विषय होने के कारण इसमें श्रृंगारभाव प्रस्तुत हुआ है। श्रृंगार विश्लेषण हेतु उपवनों का किया गया वर्णन उत्साह निर्माण करने जैसा है तो दूसरी ओर श्रीकृष्ण और शिशुपाल के युद्ध का वर्णन में सैन्य की फजियत व्यक्त करते हुए वीरता का साक्षात्कार यह इस ग्रंथ की देन है। किन्तु वीर रस की अपेक्षा श्रृंगार रस व्यक्त करने में भास्करभट बोरीकर सफल हुए हैं। साथ ही श्री कृष्ण के विरह से बेचैन हुए रूक्मिणी का वर्णन करते हुये करुण रस प्रस्तुत हुआ है। इस ग्रंथ में श्रृंगार वर्णन से अधिक होने के बावजूद भक्ति का वर्णन करने हेतु यह अतिरिक्त श्रृंगार आया है। महत्वपूर्ण यह है कि भक्ति का यह रस सिद्धांत भक्तिरस के रूप में कुछ नई चीजें जोड़ता है।

भास्करभट बोरीकर द्वारा इस ग्रंथ में निसर्ग का किया गया वर्णन, शीर्ष अलंकारों नियोजन के कारण यह ग्रंथ साहित्य की दृष्टि से संपन्न होकर वह संस्कृत काव्य जैसा बन गया है।

2. उद्धवगीता अथवा एकादशस्कंधः भारस्करभट बोरीकर

यह ग्रंथ 827 दोहों का है और भागवत ग्रंथ के एकादशस्कंदार के ऊपर की गई आलोचना है। श्रीकृष्ण भक्ति के प्रेरणा से इस ग्रंथ का निर्माण हुआ है। श्रीकृष्ण और उद्धव इनके बीच के संवाद के माध्यम से विरह, ज्ञान और भक्ति का महत्त्व वर्णन करते हुए मोक्ष धर्म का उपदेश श्रीकृष्ण ने किया है। यह इस ग्रंथ की संरचना है। इसलिए इस ग्रंथ में सात

रस को विशेष महत्व दिया गया है। किन्तु सेवानिवृत्ति धर्म के उपदेश हेतु पुरवा और उर्वशी कहानी लायी गई है। उसमें विशेषतौर से श्रृंगार रस का प्रयोग किया गया है ऐसा दिखाई पड़ता है एवं स्त्री-पुरुष की एकता मोक्ष के मार्ग में बाधा है ऐसा वर्णन आता है।

उद्धवगीता ग्रंथ महानुभाव पंथ का दो मतों को मानने वाला ग्रंथ है, और उसके लिए एक मत के विचार का खंडन किया दिखता है। वैसे ही साहित्य की दृष्टि से इस ग्रंथ में कल्पना विलास, रूपक, उपमाएँ सफल हो गयी हैं।

3. रूक्मिणी स्वयंवर : नरेंद्र

यह ग्रंथ 1800 दोहे लिखकर रामदेव यादव इसे राजा के दरबार में नरेंद्र ने पढ़कर सुनाया तब राजा ने इस ग्रंथ में अपना नाम लिखने के लिए कहा किन्तु नरेंद्र ने राजा का यह कहना नहीं माना। लोगों के विनती पर यह ग्रंथ पुनः लिखा गया तब वह 2934 दोहों का बन गया। किंन्तु उसमें मात्र 1800 दोहे नरेंद्र के हैं, बाकि दोहे केशवदेव के लिखे हैं ऐसा कुछ विद्वानों ने कहा है। भीमक राजा के दरबार में किन्नर जाति के गायक श्रीकृष्ण की कथा गा रहे थे तब रूक्मिणी ने यह कथा सुन ली और श्रीकृष्ण के प्रति उनके मन में प्रेम पैदा होकर उन्हें विरह अवस्था प्राप्त हुई। यहाँ से इस ग्रंथ की कथा का प्रारंभ होता है। इसके बाद श्रीकृष्ण और रूक्मिणी का स्वरूप वर्णन, प्रवृत्ति वर्णन, रूक्मिणी की विरह अवस्था और विरह का वर्णन, द्वारका नगर का वर्णन, द्वारका नगर का वर्णन इससे कवि का कल्पना विस्तार ओर सौन्दर्य दृष्टि देखने को मिलती है।

रूक्मिणी स्वयंवर यह ग्रंथ श्रीकृष्ण की कथा का वर्णन है। किन्तु स्पष्टता महानुभाव पंथ का दर्शन प्रस्तुत नहीं है। श्रीकृष्णभक्ति के संबंध में किया गया यह वर्णन उच्चतम व्यक्तिमत्व साक्षात्कार प्रकट करता है।

4. ज्ञानप्रबोधः विश्वनाथ बालापूरकर

यह ग्रंथ गीता के कुछ दोहों पर की गयी काव्यात्मक आलोचना है। इस ग्रंथ का लेखन काल ई.स. 1331 दिया गया है। यह ग्रंथ 1204 दोहों का है, गीता के आधार पर ज्ञान के लक्षणों को बताने हेतु इस ग्रंथ का निर्माण किया गया है, ऐसा कवि ने इस ग्रंथ में स्पष्टता से किया है। साथ ही विरह और ईश्वरभक्ति की महिमा का वर्णन करने में विशेष ध्यान दिया है। महानुभाव के द्विमत पर निष्ठा व्यक्त करते हुए यह कवि अद्विमत का खंडन इस ग्रंथ के माध्यम से करते हैं।

5. सहयाद्रिवर्णनः रवलोन्सास एवं रोधोन्यास

सहयाद्रिवर्णन यह ग्रंथ 'सहयाद्रि महात्म' इस नाम से जाना जाता है। इस ग्रंथ के दोहों की संख्या अलग-अलग पाण्डुलिपियों में उपलब्ध हुए पोथियों में अलग-अलग है। 517 दोहों के इस ग्रंथ में द्वितीय कृष्ण दत्तात्रेय का चरित्र वर्णन किया गया है। दत्तात्रेय का अवतार जिस जगह हुआ उस जगह को 'सहयाद्री' कहते है। इसलिए इस ग्रंथ को 'सहयाद्रिवर्णन' या 'सहयाद्रि महात्मे' ऐसा नाम दिया गया है। सामान्यतः दत्त मूर्ति और दत्तचरित्र का वर्णन करना यह इस ग्रंथ का मूल उद्देश्य है। इस ग्रंथ में वर्णित दत्तमूर्ति एक मुँह और दो हाथों वाली है। इसलिए तीन मुँह वाली और छः हाथ वाली दत्तमूर्ति एक मुँह और दो हाथों वाली दत्तमूर्ति न होने के कारण ऐसे मूर्ति का उपासक रहा दत्तसंप्रदाय बाद में निर्मित हुआ ऐसा विद्वानों का कहना है। क्योंकि दत्तसंप्रदाय के गाणगापुर या नरसोबा वाडी इस पवित्र क्षेत्र का उल्लेख इस ग्रंथ में नहीं आया है।

इस ग्रंथ का उद्देश्य ईश्वर भक्ति का संस्कार करना है। साथ ही इंद्रियों का काबू से होने वाले मोक्षप्राप्ति का भी वर्णन इस ग्रंथ में आया है। ईश्वर भक्ति में प्रेमस्वरूप आये प्रसंगों

का वर्णन व्यक्तिदर्शन अच्छा हुआ है। इसलिए यह ग्रंथ काव्यगुण और दर्शन के दृष्टि से महत्वपूर्ण बन गया है।

6. ऋद्धिपूरवर्णनः नारोन्यास अथवा नारायण पंडित बहालिये

ऋद्धिपूरवर्णन इस ग्रंथ के दोहों की संख्या अलग-अलग पांडुलिपियों में अलग-अलग दी गई है। 641 से 645 के बीच मानी जाती है। ऋद्धिपूर यह महानुभाव पंथ का महत्वपूर्ण तीर्थक्षेत्र माना जाता है। गोविन्द प्रभु के वास्तव्य का यह क्षेत्र होकर उनके चरण स्पर्श से चक्रधर स्वामि ने यहाँ पर महानुभाव पंथ की स्थापना की थी। इसलिए ऋद्धिपूर के मंदिरों, मठों, तालखों, पाठशालाओं आदि स्थलों का वर्णन ध्यान खींचने वाला हो गया है। साथ ही नागबिका, नागदेवचार्य इन पूज्यनीय व्यक्तियों का सम्मान इस ग्रंथ में आता है।

महानुभाव पंथ का सेवानिवृत्ति, भक्ति मार्ग का विश्लेषण इस ग्रंथ में आया है और इस दर्शन का अपने जीवन पर कैसा प्रभाव हुआ है इस प्रकार का आत्मनिवेदन भी इसमें से प्रस्तुत हुआ और उस आत्म निवेदन में कवि ने अपने हाथ से घटित पूर्व हिंसा, पाप इनको स्पष्टता से मान्य किया है। महानुभाव पंथ का सेवानिवृत्ति पथ स्वीकार करने से आये जीवन में हुए बदलाव की आत्मानुभव के द्वारा बताया है। इसलिए इस ग्रंथ में प्रस्तुत आत्म निवेदन के जरिए आत्मकथा इस वाङ्मय प्रकार के बीच इस ग्रंथ में दिखते हैं। वैसे कि यह निवेदन करते समय वर्णन कि शैली, कल्पना विस्तार और गुणों को कवि ने महत्व दिया है, ऐसा लगता है।

7. वछाहरण (वत्सहरण): दामोदर पंडित

महानुभाव पंथ में दामोदर पंडित जी का विद्वान के रूप में काफी बड़ा नाम है, साथ ही उनके 'वछाहरण' काव्य को काफी महत्वपूर्ण माना जाता है। यह काव्य भागवत दशमस्कंध में अध्याय क्रम 12,13 एवं 14 में जो वछाहरण की कहानी वर्णित है, उस पर आधारित दामोदर पंडित जी का यह काव्य ग्रंथ है। इसमें 503 दोहों की संख्या है।

'वछाहरण' यह काव्य श्रीकृष्ण के बचपन के घटनाओं से संबंधित है। बचपन में श्रीकृष्ण अघासुर का वध करते हैं। इस घटना कि सच्चाई देखने हेतु ब्रह्मदेव गाय-बछड़े और श्रीकृष्ण के मित्र गोपाल इनका अपहरण करते हैं। इस कहानी को इस ग्रंथ में वर्णित किया है। श्रीकृष्ण ईश्वर के अवतार हैं, और उनके अलौकिक शक्ति का साक्षात्कार दामोदर पंडित जी ने करवाया है। साथ ही व्यक्ति वर्णन, स्थान वर्णन और निसर्ग वर्णन के कारण इस ग्रंथ के काव्यात्मकता का अनुभव होता है। यह ग्रंथ पढ़ते हुए दामोदर पंडित जी के प्रभावशाली कवित्व का परिचय होता है।

महानुभाव पंथ के इस महत्त्वपूर्ण सात ग्रंथों के माध्यम से श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति प्रस्तुत हुई है, साथ ही महानुभवों का विरक्ति मार्ग भी प्रभावी ढंग से प्रस्तुत है। इन सातों ग्रंथों के काव्य गुण कल्पना, रस और अलंकार अच्छे ढंग से प्रस्तुत हुए हैं। महत्त्वपूर्ण यह है कि काव्य और दर्शन को अपने में समाने की मराठी भाषा में क्षमता है। यह भी इन ग्रंथों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वैसा ही स्थान मराठी भाषा और समकालीन संस्कृति को समझने के संदर्भ में भी है। यह ध्यान में लेना जरूरी है।

8.7 महानुभाव पंथ के चरित्र ग्रंथ

महानुभाव पंथ के संस्थापक चक्रधर यद्यपि ईश्वरसत्ता का विरोध करते हैं और इस सत्य को उनके अनुयायियों ने भी स्वीकार किया था। महानुभाव ईश्वर, पोथी, धर्म और वर्ण–जाति व्यवस्था के विरोध के रूप में प्रस्थापित हुआ। इसकी जन सामान्य में

लोकप्रियता से वैदिक ब्राह्मण, पुरोहितों के धर्माडंबर पर लोगों ने विश्वास करना बंद किया। इससे भयभीत होकर ब्राह्मणों ने महानुभाव पंथ और चक्रधर के विरोध में अपप्रचार करने का सिलसिला शुरू किया। इस कारण महानुभाव पंथ के अनुयायियों में इस घृणित कृत्य के विरोध के लिए अभिनव पद्धति से महानुभाव पंथ का प्रचार करने की सोच पैदा हुई। उन्होंने चक्रधर को कृश्ण के पाँचवें अवतार होने की बात फैलानी शुरू की। सामान्य जन अवतारी पुरुष के रूप में चक्रधर को मान्यता देने लगे। अतः चक्रधर के चरित्रग्रंथ 'लीलाचरित्र' गोविन्दप्रभु चरित्र, स्मृतिस्थान, सहयाद्रि वर्णन आदि ग्रंथों में चक्रधर और गोविंद प्रभु के अलौकिक पुरुष होने तथा अनेक चमत्कार करने वाले असाधारण व्यक्ति के रूप में वर्णन किया गया है। ब्राह्मणवाद के अपप्रचार और घृणात्मक, निंदात्मक टिका टिप्पणी से महानुभाव पंथ को बचाएं रखने के लिए यह युक्ति की गई थी।

लीलाचरित्र

लीलाचरित्र में चक्रधर का अत्यंत सुंदर पुरुष के रूप में वर्णन किया गया है। इसके साथ ही अलौकिकत्व सिद्ध करने हेतु मृत व्यक्ति को जीवंत करना, साँप का जहर उतारना, बिमार बच्चों की बिमारी दूर भगाना जैसे प्रसंगों का वर्णन किया गया है। साथ–ही–साथ बच्चों के साथ खेलना उन्हें कहानी सुनाकर मनोरंजन करना, पशु चराना, कहीं भी जाकर सो जाना जिससे उनका एक सामान्य व्यक्ति होने का भी आभास मिलता है। लीलाचरित्र में उस समय की सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक गतिविधियाँ, कृषि व्यवसाय, न्यायव्यवस्था आदि की भी जानकारी मिलती हैं। सामाजिक और साहित्यिक दृष्टि से यह अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ माना गया है। मराठी भाषा के आधग्रंथों में यह असाधारण ग्रंथ के रूप में चर्चित है।

गोविंद प्रभु चरित्र– महिम भट

महानुभाव पंथ में गोविंद प्रभु का स्थान महत्वपूर्ण माना गया है, वे चक्रधर के गुरु थे और इन्हें भी कृष्ण के पाँच अवतारों में एक माना गया है। इसलिए इनके जीवन की घटनाओं और व्यवहार को असामान्य व्यक्ति की कोटी में डाल दिया गया। उस काल में जातिप्रथा का कठोरता से पालन किया जाता था। छुआछूत, उच्च–निम्न के भेद के चलते समाज कई–कई जाति–उपजातियों में बँटा हुआ था। गोविंदप्रभु चूंकि जाति व्यवस्था और भेदभाव के विरोध में प्रगतिशील विचार लेकर आए थे। वे छुआछूत को ख़त्म करने के इरादे से मातंग और महार के घर जाकर खाना खाते, गरीब किसानों के साथ बैठकर भी खाना खाते थे। उनका यह प्रयास समतावाद के लिए था, अतः सर्वसामान्य जनों के लिए यह एक अलौकिक पुरुष का व्यवहार और उनके लिए प्रेरणा था।

इस ग्रंथ में भी लीलाचरित्र जैसे ही सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है। इस ग्रंथ के लेखक म्हाइंभट को गोविंदप्रभु के साथ रहने का लाभ मिला था, अतः इस ग्रंथ में प्रसंगों और समाज का वर्णन वास्तविक है। प्रमाणिकता की दृष्टि से यह ग्रंथ का महत्वपूर्ण माना गया है।

स्मृतिस्थल

स्मृतिस्थल–नामक ग्रंथ महानुभाव पंथ के पहले आचार्य नामदेव (भटोबाद) का चरित्र ग्रंथ है। चक्रधर के बाद महानुभाव पंथ की जिम्मेदारी नामदेव ने संभाली थी। पंथ के नियमों का कड़ाई से पालन किए जाने के शिष्यों को आदेश देने वाले कठोर आचार्य कठिन समय आने पर स्वयं ही नियमों को तोड़ते नजर आते हैं। महाराष्ट्र में पड़े अकाल के समय भिक्षा न मिलने पर अपने शिष्यों के लिए वे खुद ही भोजन पकाते थे। लोगों को अपनी ओर तथा पंथ की ओर आकर्षित करने का अद्‌भुत कोशल उनमें था। मराठी भाषा के प्रति

अतिसम्मन तथा चक्रधर द्वारा बताए गए नियमों का पालन इत्यादि का ग्रंथ में वर्णन किया गया है। नामदेव की चारित्रिक विशेषताओं के अतिरिक्त तत्कालीन समाज, राजनीति और संस्कृति का यथार्थपूर्ण वर्णन इस ग्रंथ की विशेषता है। स्त्री पर होने वाले अत्याचार, वैश्या व्यवसाय की वृद्धि, खान–पान के पदार्थ आदि का वर्णन ग्रंथ को यथार्थवादी रचना के रूप में प्रस्तुत हुआ है। मराठी की बोली 'वन्हाडा' में यह ग्रंथ रचा गया है, तत्कालीन समय में प्रचलित मुहावरे और लोकोक्तियों का भरपूर प्रयोग किया गया है। अतः मराठी का अतीशय प्रामाणिक और यथार्थपूर्ण ग्रंथ के रूप में महाराष्ट्र में यह लोकप्रिय रहा है।

8.8 सारांश

महानुभाव पंथ के सम्पूर्ण दर्शन और आचरण पर बौद्ध चिंतन परंपरा के साथ जैन धर्म का प्रभाव देखा गया है। विशेष रूप से अहिंसा के तत्व को तथा जनसाधारण की भाषा के प्रयोग में यह विशेष रूप से दृष्टिगत होता है। पंथ दर्शन का प्रचार–प्रसार मराठी बोली में किए जाने से पंथ के दर्शन और वचनों को समझने का जनसामान्य को अवसर प्राप्त हुआ। परिणामतः जनता के बीच यह पंथ अतीशय लोकप्रिय होता गया। इसका दूसरा महत्वपूर्ण पहलू यह था कि बौद्ध दर्शन के समतावादी विचार को जनता के बीच प्रचारित करके व्यवहार में उसे संभव बनाने में महानुभाव पंथ ने सफलता हासिल की। अवजातिकरण की प्रक्रिया को शुरू करने का श्रेय प्रगतिशील महानुभाव पंथ को दिया जाना चाहिए। ब्राह्मणवाद की संकीर्ण विचारधारा के विरोध में खड़े पंथ के संस्थापक चक्रधर ने नारी वर्ग को ज्ञान और विचार की परंपरा से जोड़कर बौद्ध परंपरा को ही आगे बढ़ाया।

इकाई 9 वीरशैव पंथ

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 वीरशैव पंथ का ऐतिहासिक परिवेश

9.3 वीरशैव पंथ का सिद्धांत

9.4 वीरशैव पंथ की उत्पत्ति

- 9.4.1 भक्ति-शक्ति
- 9.4.2 षट्स्थल सिद्धांत

9.5 बसवेश्वर जीवन परिचय

9.6 वीरशैव पंथ में व्यक्त सामाजिक चेतना

- 9.6.1 ब्राह्मणवादी चिंतन परंपरा की निस्सारता
- 9.6.2 श्रम की प्रतिष्ठा
- 9.6.3 सामाजिक-क्रांति : जातिगत समानता का आग्रह
- 9.6.4 सनातनी परंपराओं का विरोध

9.7 धार्मिक कर्मकांडों की आलोचना

9.8 सामाजिक चेतना का विस्तार

9.9 स्त्री मुक्ति के प्रवर्तक बसवेश्वर

9.10 बसवेश्वर के आर्थिक-सुधार

9.11 आभिजात्य भाषा का विरोध : जनसामान्य की भाषा का स्वीकार

9.12 सारांश

9.0 उद्देश्य

आप वीरशैव पंथ नामक इकाई पढ़ने जा रहे हैं। इस इकाई में बारहवीं शताब्दी में कर्नाटक प्रदेश में प्रचलित 'वीरशैव पंथ' का परिचय दिया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- वीरशैव पंथ की स्थापना के उद्देश्य को समझ सकेंगे;
- वीरशैव धर्म एवं अन्य धर्मों के अंतर को समझ सकेंगे;
- वीरशैव धर्म के सनातनी परंपराओं के विरोध के मूल मंतव्य का परिचय पा सकेंगे,
- वीरशैव पंथ के समता के दर्शन का विश्लेषण कर सकेंगे;
- स्त्री के प्रति उदार दृष्टिकोण से बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष को आप चिन्हित कर सकेंगे;
- आर्थिक सुधारों के पीछे बसवेश्वर के दृष्टिकोण का मूल्यांकन कर सकेंगे; और
- जाति की संरचना की कठोरता तत्कालीन स्वरूप तथा उसके तोड़ने पर दी जाने वाली कठोरतम सजाओं से परिचित हो सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

वीरशैव पंथ का जन्म कर्नाटक के वायव्य प्रदेश में बारहवीं शताब्दी में हुआ है। यह एक सशक्त शैव आंदोलन है। अगामी दिनों में वीरशैव आंदोलन कर्नाटक और आंध्रप्रदेश के पूरे क्षेत्र में फैल गया था। 'वीर शैव पंथ' को 'वीरशैव धर्म' के रूप में भी जाना जाता है। इतिहास तथा समकालीन समाज में इसे 'लिंगायत धर्म' भी कहा जाता है। संप्रदायवादी, पुरोहितशाही सिद्धांतों के विरोध में 'वीरशैव धर्म' की स्थापना की गयी। इसमें मूर्ति पूजा तथा जाति के आधार पर रचित श्रेणीकृत समाज का खंडन किया गया। जन्म के कारण निर्मित जातीय संबंधों को वीर शैव आंदोलन ने ठुकरा दिया एवं सामाजिक भाईचारे की स्थापना पर जोर दिया। इन्हीं बातों पर इस इकाई में विचार करेंगे।

9.2 वीरशैव पंथ का ऐतिहासिक परिवेश

कर्नाटक के धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन में बारहवीं शताब्दी में महान क्रांति हुई। सभी धर्म सत्वहीन और निस्तेज हो गए थे। सर्वत्र अंध श्रद्धा और अंध विश्वास का राज था। जाति भेद, वर्ग भेद तथा अधिकार भेद के कारण समाज में केवल दो ही वर्गों का बोलबाला था - गरीब और धनवान। अतः यह समय क्रांति के लिए पूर्ण परिपक्व था। इस क्रांति के जन्मदाता बसवेश्वर थे।

बसवेश्वर 12वीं शताब्दी के महान दार्शनिक, राजनीति-विशारद और क्रांतिकारी समाज सुधारक थे। उनसे प्रतिपादित जीवन-मूल्य कालातीत एवं सीमातीत तथा वर्तमान युग के लिए अति लाभप्रद हैं। उनका कार्यक्षेत्र मुख्यतः कर्नाटक एवं दक्षिण भारत था। पर महाराष्ट्र, उड़ीसा, गुजरात, उत्तर प्रदेश एवं कश्मीर तक उनका प्रभाव फैला हुआ है। समाज के मार्गदर्शन करने के ध्येय से उन्होंने कल्याण में 'अनुभव मंडप' की स्थापना की। अनुभव मंडप एक ऐसा केंद्र था जहाँ सारे शरण आध्यात्मिक एवं सामाजिक विषय पर गहन चिंतन-मनन करते थे। अनुभव मंडप में जो साहित्य निर्मित हुआ, उसका नाम 'वचन साहित्य' है। वचन साहित्य का मूल उद्देश्य सूक्ष्म आध्यात्म-चिंतन को जन साधारण के लिए सरल एवं संबोध बनाना था।

अनुभव मंडप में सम्मिलित संत 'शरण' कहलाते थे, इसीलिए वीरशैव पंथ को शरण पंथ तथा वीरशैव साहित्य को शरण साहित्य भी कहा जाता है। 'वचन साहित्य' इन्हीं शरणों की अनुपम देन है। जीवन के सारे क्षेत्रों में निम्न, शोषित जनता के उद्धार के लिए, जात्यातीत समाज के महत्व को समझाने के लिए और वीरशैव दर्शन का प्रचार करने के लिए इटलिंग तत्व को आत्मसात करने, परिशुद्ध आचरण से वीरशैव धर्म का प्रचार करने के लिए जो व्यक्ति वचनबद्ध हुए थे वे 'जंगम' कहलाते थे।

बसवेश्वर की सर्वाधिक सेवा मानव समाज में निहित ऊँच-नीच के भेदभाव को मिटाने और आचार तथा विचार के बीच की खाई पाटने की रही है। उन्होंने नैतिक जीवनयापन की अनिवार्यता पर अधिक जोर दिया। उन्होंने क्रांतिकारी सुधारवादी आंदोलन का प्रवर्तन किया जो वर्णाश्रम व्यवस्था का कट्टर विरोधी था। उनका अटल विश्वास था कि मानव-मानव में कोई अंतर नहीं है। समानता, सहानुभूति और मानवीयता के आधार पर भारतीय समाज के पुनर्घटन का काम तेजी से बढ़ने लगा। *उन्हीं की प्रेरणा से ऊँच-नीच का भेद-भाव मिटाने हेतु एक ब्राह्मण कन्या का विवाह एक शूद्र कुमार से हुआ था।*

यह केवल बारहवीं शताब्दी की ही नहीं बल्कि विश्व के सामाजिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है।

समानता के सिद्धांत के अनुसार समाज सुधार की उनकी निष्ठा की तुलना बीसवीं शताब्दी में इसी क्षेत्र में कार्यरत महात्मा ज्योतिबा फुले, डॉ. आंबेडकर, महात्मा गांधी की लगन से की जा सकती है। कर्नाटक के बेलगाँव में सन् 1924 के कांग्रेस अधिवेशन में महात्मा गांधी ने बसवेश्वर के विषय में कहा था- 'आठ सौ वर्ष पहले बसवेश्वरजी ने जिन तत्वों का आचरण किया, उपदेश दिया, उन सभी तत्वों का आचरण मेरे लिए संभव नहीं। उनमें से कुछ तत्वों के आचरण का मैं प्रयत्न कर रहा हूँ। साधक अवस्था में हूँ, सिद्ध नहीं। लेकिन बसवेश्वरजी सभी तत्वों को आत्मसात कर सके थे। किसी भी प्रकार का भेदभाव उनमें लक्षित नहीं होता। आज वे रहते तो सारे संसार के लिए पूंजनीय बन जाते '।

9.3 वीरशैव पंथ का सिद्धांत

वीरशैव पंथ का अपना एक विशेष सिद्धांत है। शंकराचार्य का अद्वैत माया सिद्धांत को मानते हैं। पर वीरशैव यहाँ इनसे अलग हो जाते हैं। यह संसार को सत्य कहते हैं। इनके अनुसार प्रारंभ में केवल शिव थे सर्वशून्य और निरावलंब। वे निरंजन ब्रह्म कहलाए। उनमें चैतन्य का उदय हुआ जो निरंजन ओंकार शक्ति कहलाई। तत्पश्चात इनसे शून्यलिंग अभिव्यक्त हुआ। सृष्टि की उत्पत्ति की यह प्रथम अवस्था थी। शून्य लिंग का ही दूसरा नाम निर्गुण निराकार ब्रह्म हुआ। वीरशैवों के मत में यह शून्य अंतिम और आदि स्थिति का द्योतक है, जो हर तरह से पूर्ण है। यह उपनिषद में वर्णित 'ओं पूर्णमदः पूर्णमिदम पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाव शिष्यते '- पूर्ण का पर्याय कहा जा सकता है। वीरशैव, आत्मा और परमात्मा को शंकराचार्य के अद्वैत की तरह एक मानते हैं। इनके अनुसार जीवात्मा ही षट्स्थलों से गुजरती हुई परमात्मा बन जाती है। भक्त अथवा साधक का चरम लक्ष्य इसी अवस्था अर्थात् शून्य की प्राप्ति है।

9.4 वीरशैव पंथ की उत्पति

वीरशैव पंथ की उत्पत्ति को लेकर एक मत नहीं है। डॉ एस.एस. नंदीमठ के अनुसार 'वीरशैव' संप्रदाय अति प्राचीन काल से प्रचलित शैव मत का ही एक परिष्कृत रूप है। श्री एम.आर. साखरे यह समझते हैं कि इस संप्रदाय की स्थापना बसवेश्वर के द्वारा हुई। 'वीरशैव' शब्द से यही प्रतीत होता है कि प्राचीन शैवमत का ही यह एक परिष्कृत रूप है।

कुछ वीरशैव मतावलंबी यह मानते हैं कि शैवागम के आधार पर इस संप्रदाय का संगठन हुआ है तो और कुछ लोग यह बताते हैं कि कश्मीर के शैव-सिद्धांत के दार्शनिक तत्व ही वीरशैव संप्रदाय के मूल स्रोत हैं। इस मत की दार्शनिक मान्यता 'शक्ति विशिष्टाद्वैत' कहलाती है। श्रीपति पंडिताराध्य का वेदांत सूत्र पर लिखा हुआ 'श्रीकर भाय' इस मत का आधार ग्रंथ माना जाता है। किंतु बसवेश्वर तथा उनके अनुयायी भक्तों की वाणी में, जिनको कन्नड़ में 'वचन' कहते हैं उनमें वीरशैव संप्रदाय के दार्शनिक 'तत्वों' का सार प्राप्त होता है। यही कारण है कि शिवशरणों के 'वचन', 'वचन-शास्त्र' अथवा 'वचन धर्म' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन वचनकारों ने अपने वचनों में जीव, जगत, ब्रह्म, मुक्ति, मुक्ति का साधन मार्ग आदि गहन विचारों पर चिंतन-मनन किया है और अपनी साधना तथा अनुभव की कसौटी पर कस कर अत्यंत सहज तथा सरल ढ़ंग से अपनी आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति की है जो मौलिक ही नहीं, महत्वपूर्ण भी है। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि वीरशैव संप्रदाय दार्शनिक दृष्टि से 'शक्ति विशिष्टाद्वैत' कहलाता है। उसके अनुसार ईश्वर एक है जिन्हें 'शिव' कहा जाता है। शिव नित्य हैं, सर्व-स्वतंत्र हैं, सृष्टि, स्थिति, लय से परे हैं। वे अवर्णनीय हैं, अनिर्वचनीय हैं, पंचेंद्रियों के लिए अगोचर हैं, सब वस्तुओं से परे हैं। शिव चैतन्य स्वरूप हैं। निर्गुण, निराकार हैं, बसवेश्वर अपने एक वचन में कहते हैं-

जहाँ देखता हूँ, वहाँ तुम हो,
सब में तुम्हारा विस्तार है।
विश्व के बाहु तुम हो,
विश्व के नयन तुम हो,
विश्व के मुख तुम हो,
विश्व के पैर तुम हो,
हे कूडल संगम देव।

अल्लमप्रभु नामक प्रसिद्ध शिवशरण कहते हैं कि 'यह वह शिशु है जिसके माँ-बाप नहीं हैं, तुम स्वयं ही पैदा होकर बड़े हुए हो, अभेद्य हो। अपने चरित्र को तुम ही बता सकते हो।' उपनिषदों में जिसको 'नेति-नेति' कहा गया है उसी को वचनकारों ने 'बयलु' अर्थात 'शून्य' कहा है। यह जगत् परमात्मा का अंश है, पर वही परमात्मा नहीं है। परमात्मा जगत् में व्याप्त है, इतना ही नहीं, वह जगत् से भी अतीत है।

9.4.1 भक्ति-शक्ति

वीरशैव पंथ में कुछ लाक्षणिक शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। जीव 'अंग' कहलाता है जो सदाशिव द्वारा उत्पन्न होता है। जीव पर जब अविद्या का आवरण पड़ता है तब वही जीव कहलाता है। कश्मीर के शैव सिद्धांत की तरह वीरशैव मत भी शक्ति की सत्ता स्वीकार करता है। शिव अपने ही भीतर स्थित शक्ति द्वारा जगत् की सृष्टि करते हैं शक्ति में शिव के सभी गुण विद्यमान हैं। शक्ति सर्व साक्षिणी है, सत्य संपूर्ण है, निर्विकल्प है, और महेश्वरी है। इसी स्वतंत्र-शक्ति के बल से कलाशक्ति से जगत् की सृष्टि होती है। भक्ति-शक्ति का संबंध 'अंग' अथवा जीव से है। यह भक्ति-शक्ति भाव का नाश करती है। वीरशैव मत में यही कला-शक्ति माया के रूप में प्रयुक्त होती है। लेकिन इस मत में माया उसी तरह शिव का अंग है जिस तरह गर्मी, अग्नि का है। इस शक्ति विशिष्टाद्वैत में शिव परब्रह्म है, शक्ति उनमें एकरस होकर विद्यमान रहती है। वीरशैव मानते हैं कि शक्ति से भक्ति बड़ी है, क्योंकि शक्ति प्रवृत्ति मार्ग की ओर ले जाती है और भक्ति निवृत्ति मार्ग की ओर।

शक्ति से आवरण पैदा होता है अतः शिव और अंग के बीच पर्दा पड़ता है। किंतु भक्ति इस पर्दे को हटाती है। शक्ति से अंधकार उत्पन्न होता है और भक्ति शुभ्र तेज चमकती है और परदा अथवा आवरण हटाती है। शिवैक्य प्राप्त करने के लिए जीव को अपने अंग के गुणों से मुक्त होकर लिंगत्व को प्राप्त करना चाहिए। इस संप्रदाय में साधना के आठ सहायक हैं जो अठावरण कहलाते हैं। उनके नाम हैं-गुरु, लिंग, जंगम, प्रसाद, पादोदक, विभूति, रूद्राक्ष और मंत्र। अष्ठावरण की तरह भक्त की साधना में दूसरा सहायक है पंचाचार, ये पंचाचार हैं - सदाचार, गणाचार, नित्याचार, शिवाचार तथा लिंगाचार।

9.4.2 षट्स्थल सिद्धांत

वीरशैव मत का भक्ति मार्ग - 'षट्स्थल सिद्धांत' कहलाता है। साधक की साधनावस्था को छः भागों में विभाजित किया गया है और प्रत्येक भाग के लिए एक-एक अलग नाम रखा गया है। ये षट्स्थल इस प्रकार हैं - भक्तस्थल, महेश्वरस्थल, प्रसादिस्थल, प्राणलिंगस्थल, शरणास्थल तथा ऐक्यस्थल। ये छः स्थल एक प्रकार से साधना की छः सीढ़ियाँ हैं। इन छः स्थलों में अंतिम स्थल प्रधान है। इस स्थल का दूसरा नाम है 'शून्य संपादन '। इस स्थिति को प्राप्त करके 'जीव का जीव' रूप मिट जाता है और वह 'शिवरूप' में मिल जाता है। षट्स्थल दो प्रधान समूह में रखे गये हैं। पहला समूह है - भक्त, महेश्वर तथा प्रसाद और दूसरा ज्ञान मार्ग भी कहलाता है। प्रथम भाग की अवस्था में परशिव के प्रति आस्था

पैदा होती है और दूसरे भाग में आध्यात्मिक भावना उत्पन्न होती है जिसमें शिवरूप के प्रारंभिक ज्ञान का अनुभव होता है। उसके बाद यह अनुभव आनंद-भक्ति के रूप में परिवर्तित होता है जो समरस-भक्ति के नाम से अभिहित है।

इस षट्स्थल-भक्ति सिद्धांत में कर्म, ज्ञान; भक्ति का समन्वय किया गया है। इस भक्ति-सिद्धांत को 'समन्वय सिद्धांत' भी कहते हैं। यह वीरशैव मत का सार सर्वस्व है। वस्तुतः यह एक भक्ति-प्रधान संप्रदाय है।

9.5 बसवेश्वर जीवन परिचय

बसवेश्वर के जन्म लेने और समाज सुधारक के रूप में कार्य करने से पूर्व की सामाजिक और धार्मिक स्थिति पुरात्व परंपरावादी और धार्मिक आडंबरयुक्त हिंदुत्व, भारत के सभी धर्मों में, अनेक जाति-उपजातियों में बिखर गया था। अपनी-अपनी सुविधानुसार ऐच्छिक धार्मिक-सिद्धांत और संहिताओं का निर्माण कर लिया गया था। समाज में मनुष्य की मान-प्रतिष्ठा उसके जन्मजात जाति विशेष के आधार पर ही आंकी जाती थी।

धार्मिक जीवन में संस्कार - 'उपनयन' अथवा 'ब्रह्मोपदेश' प्रथम तीन वर्ण जाति तक ही सीमित था। भारतीय हिंदू समाज में समाज के बहुभागी शूद्रों के लिए कोई संस्कार नहीं था और उनके लिए धार्मिक ग्रंथों का पठन-पाठन भी निषिद्ध था। मंदिर प्रवेश से उन्हें वंचित रखा गया था, अपनी आस्था हेतु शूद्रों तथा आदिवांसी वर्ग ने प्रकृति पूजा का सरल और सुगम रास्ता अपनाया। बहु देवताओं की पूजा प्रचलित थी। अंधविश्वास परंपरागत अर्थहीन क्रिया-कलापों को ही धर्मांश समझा जाता था। धर्म के नाम पर अनेक कुत्सित और भयावह प्राणी-हिंसा के समान रीति-रिवाजों का पालन होता था।

ऐसे संक्रमण काल में सन् 1131 में इंगलेश्वर नामक गाँव में बसवेश्वर का जन्म हुआ था। यह गाँव बागेवाडी के पास है। वर्तमान में यह गाँव कर्नाटक राज्य के बिजापुर जिले का एक भाग है। उनके पिता, मादरस, माता मादलंबिका दोनों शैव ब्राह्मण थे तथा बागेवाडी स्थित नंदिकेश्वर मूर्ति के परम भक्त थे। बसवेश्वर भक्तिपूर्ण वातावरण में बड़े हुए। बचपन में ही बसवेश्वर सूक्ष्म दृष्टिवान, संवेदनशील, करुणामय-हृदयी, जिज्ञासु-बुद्धिशाली और स्वतंत्र चिंतक थे। प्रथा, रीति-रिवाजों, पुरातन परंपरा में उनका विश्वास नहीं था।

बसवेश्वर जन्मजात क्रांतिकारी थे। वे उस समय प्रचलित समाज में घर कर बैठे बंधनों का खंडन करते हुए सभी से बिना किसी संकोच के मिलते-जुलते थे। एक बार, उन्होंने देखा कि एक अंधा अछूत रास्ते पर गिर पड़ा है और वह घायल है, बसवेश्वर उसे उठाकर अछूतों की बस्ती में उसकी झोंपडी पर छोड़ आते हैं। इस घटना से सनातनी रूढ़िवादी और कट्टर पंथी ब्राह्मणों की भौहें तन गईं। उन्होंने आग्रह किया कि बसवेश्वर को चाहिए कि अस्पृश्य के संपर्क में आने और अस्पृश्यों की बस्ती में हो आने के कारण प्रायश्चित करे। बसवेश्वर ने प्रायश्चित करने से स्पष्ट रूप से नकार देते हुए कहा कि अस्पृश्य भी दूसरे साथी मनुष्य की भांति ही मानव है और उसके प्रति प्रदर्शित अनुकंपा उचित ही नहीं मानवता का आदर और सम्मान भी है।

बसवेश्वर जब आठ बरस के हुए, तो परंपरा के अनुसार घर में उनके उपनयन संस्कार की तैयारियाँ प्रारंभ हुई। बसवेश्वर ने अपने माता-पिता से पूछा कि मेरी बहिन नागलांबिका का उपनयन संस्कार क्यो नहीं किया गया? उन्हें बताया गया कि उपनयन संस्कार केवल बालकों का किया जाता है न कि बालिकाओं का। परंतु इस कथन से बसवेश्वर आश्वस्त नहीं हुए और उन्होंने कहा कि जो संस्कार उनकी बहिन के लिए निषिद्ध है उसे वे भी नहीं अपनायेंगे। अग्रहार के मुखिया मादरस इस विरोध को सह न पाये। इस घटना ने गृह-

कलह को जन्म दिया। इस घटना के बाद कुलगुरु जतदेव मुनि ने बालक बसव को कूडलसंगम ले जाकर आध्यात्मिक ज्ञान के साथ सामाजिक शिक्षा भी दी। कूडलसंगम में गुरु के मार्गदर्शन में बसवेश्वर ने साधना की। बसवेश्वर ने इसी स्थान पर साहित्यिक, दार्शनिक और धार्मिक ग्रंथों का चिंतन-मनन किया। वे अनेक विद्वान संत और भक्तों के साथ आध्यात्मिक विषय पर विचार विमर्श करते थे। उनकी बहुत सी विचार धाराएँ और योजनाएँ समाज में परिवर्तन लाने की ओर अग्रसर थीं।

बसवेश्वर की बड़ी बहन नागलांबिका और उसके पति शिवदेव, बसवेश्वर की देखभाल के लिए, कूडलसंगम के समीप रहते थे। सन् 1143 में नागलांबिका और शिवदेव दंपति के घर चन्नबसण्णा का जन्म हुआ। वह छोटी उम्र में ही ज्ञानावतार और ज्ञानमूर्ति के रूप में माने जाने लगे। नागलांबिक, शिवदेव तथा चन्नबसवण्णा की उपस्थिति ने वहाँ के आध्यात्मिक वातावरण को बढ़ावा दिया जिससे बसवेश्वर अति प्रभावित हुए।

बसवेश्वर की माँ के बड़े भाई बलदेव बिज्जल राजा के दरबार में मंत्री थे, वे अपने गुरु जातदेव मुनि के पास बसवेश्वर की शादी अपनी पुत्री के साथ करने का प्रस्ताव रखते हैं पहले तो बसवेश्वर ने उसे अस्वीकार कर दिया क्यों कि वह सोच रहे थे कि विवाह उनके आध्यात्मिक विकास, सामाजिक तथा धार्मिक सुधारवादी योजनाओं के मार्ग में उलझनें पैदा करके रुकावट बनेगा। परंतु गुरुदेव द्वारा समझाये जाने पर, बसवेश्वर विनीतभाव से विवाह के लिए राजी हो गया। सन् 1152 में बलदेव की पुत्री गंगांबि के साथ बसवेश्वर का विवाह हुआ।

बसवेश्वर अपने आत्मसम्मान और स्वतंत्र प्रवृत्ति के कारण अधिक दिनों तक अपने ससुर के घर में नहीं रहे। अपनी उपजीविका कमाने के लिए बसवेश्वर ने बिज्जल के अर्थ विभाग में लिपिक की नियुक्ति स्वीकार कर ली। अपनी बुद्धिमत्ता, योग्यता, कर्तव्य प्रज्ञा, कर्तव्य परायणता, कर्तव्यनिष्ठा और कर्म संपादन के प्रति समर्पण भक्ति के कारण शीघ्र ही प्रसिद्ध हुए। आर्थिक प्रबंध की बहुत सी अनिमतताओं, न्यूनताओं, अनेक दोषों और गलतियों को इन्होंने दूर कर दिया। राज बिज्जल की कृपा दृष्टि पड़ने पर बसवेश्वर बहुत जल्दी आर्थिक विभाग के मुखिया बन गये। इसी समय में बिज्जल ने (1156) अपने आप को स्वतंत्र राजा घोषित करके अपनी राजधानी को मंगलवेडे से कल्याण को स्थानांतर कर दिया। कुछ ही वर्षों बाद (1162) बसवेश्वर के ससुर बलदेव बिज्जल राजा के यहाँ मंत्री थे, उनकी मृत्यु हो जाने पर बसवेश्वर को मंत्री बनाया गया।

9.6 वीरशैव पंथ में व्यक्त सामाजिक चेतना

बसवेश्वर ने कल्याण पहुंचने पर समाज सुधार के कार्य हाथ में लिए। उनकी उत्कट अगाध भक्ति, लुभानेवाला, आकर्षक व्यक्तित्व और उनके श्रेष्ठ सैद्धांतिक आदर्श ने जीवन से हताश और निराश साधारण लोगों को जीवन जीने की शक्ति प्रदान की। मंत्री पद की व्यस्तताओं के बावजूद समय निकालकर अपनी आध्यात्मिक साधना को साधते हुए भी सामाजिक और धार्मिक सुधार में लगे रहते थे। कल्याण का उनका जीवन विचित्र घटनाओं से भरा हुआ रहा है। जो स्वप्न उन्होंने कूडलसंगम में देखा था और संजोया था वे सभी एक के बाद एक कल्याण में चरितार्थ होते गये। इसलिए वे एक नये धर्म की स्थापना करना चाहते थे जिसके अनुसरण और पालन से लोग इसी जीवन में यहीं पर परम सुख का आनंद प्राप्त कर सके। शैव धर्म के सुधार के पीछे यही उद्देश्य था। उन्होंने जोर देकर कहा कि भक्ति मार्ग से ही परमात्मा की अनुभूति होती है। उन्होंने मनुष्यों के बीच के सभी प्रकार के जातीयता, धार्मिक, सांप्रदायिक और लिंग आधारित भेदभाव का खण्डन किया है। वे स्वतंत्रता , समानता और भ्रातृत्व पर आधारित सामाजिक और धार्मिक आंदोलन के

नेता के रूप में जाने जाते थे। उनकी ख्याति से प्रभावित होकर अन्य प्रदेश के संत भी कल्याण की ओर दौड़ पड़े। इनमें कश्मीर के राजा महेंद्र भूपाल; आदय्या, गुजरात से; मैदुनरामय्या, आंध्रा से; सकलेश मादरस, दक्षिण से आकर कल्याण में शरण-धर्मानुयायी बनकर रहने लगे। ये सभी महानुभाव विभिन्न जातियों के, अनेक विध व्यवसाय करने वाले और तरह-तरह के पेशे करने वाले थे। वहाँ कुम्हार, धोबी, मछुआरे, सुनार, चमार, लुहार, केवट आदि सभी थे। अर्थात उस समाज में लगभग एक सौ पचास वचनाकार थे। उनमें तीस से भी ज्यादा महिलाएँ थीं।

9.6.1 ब्राह्मणवादी चिंतन परंपरा की निस्सारता

बसवेश्वर के घर को 'महामने' अर्थात 'बड़ाघर' कहा जाता था। सामाजिक और आध्यात्मिक क्रियाकलापों का यह केंद्रस्थल बना हुआ था। बिना किसी जातिभेद और ऊँच-नीच भेद के उस घर में सबका समान भाव से स्वागत होता था, अनुभव गोष्ठी होती थी और लोगों का अनवरत आना जाना होता था।

बसवेश्वर ने इस बात पर अत्यधिक जोर देकर कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन-यापन के लिए अपनी रुचि और प्रशिक्षण के अनुसार कोई-न-कोई व्यवसाय या धंधा करें। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने परिश्रम की रोटी ही खाये। कुछ धर्मों ने वैराग्य के नाम पर आलसीपन को बढ़ावा दिया है। बसवेश्वर का यह दृढ़-विचार था कि कोई भी व्यक्ति दूसरों के श्रम पर आश्रित होकर आलस्य का जीवन न बितावे। यहाँ तक कि इन्होंने यह भी कह डाला कि संत और भक्त तक अपनी कमाई की रोटी ही खाये दूसरों पर आश्रित न रहें।

परिश्रम की रोटी पर जोर देते हुए उन्होंने यह भी कहा कि प्रत्येक को चाहिए कि वे ईमानदारी से और ईमानदारी के साधनों से कमाई प्राप्त करें। उन्होंने जोर देकर कहा कि प्रत्येक को चाहिए कि वह इतना ही कमाये जितने कि उनके परिवार के भरण-पोषण के लिए नितांत अनिवार्य है, ना कि जमा करने की भावना से कमाये। बसवेश्वर ने कायिक श्रम को अत्यंत उच्च पूजनीय और देवत्व का स्थान दिया है। देवत्व संपन्न कार्य की संकल्पना या धारण को ही 'कायक' नाम दिया गया है।

9.6.2 श्रम की प्रतिष्ठा

व्यवसाय और धंधे जातियता के सूचक थे। बहुत सी जातियों के लोग अपनी ही जाति के पारंपरिक व्यवसाय और धंधे करते थे। मनुष्यों को उनके काम-धंधे के आधार पर ही मान-प्रतिष्ठा प्राप्त थी। कुछ व्यवसाय और कार्य सामाजिक दृष्टि से उच्च और प्रतिष्ठित तथा कुछ कामकाज निम्न और हीन समझे जाते थे। सामान्यतया जो कार्य शारीरिक श्रमाधारित होता था उसे निम्न स्तर का आंका जाता था और उस कार्य में संलिप्त और नियोजित लोगों की कीमत कम आंकी जाती थी, जब कि पुजारी, अध्यापक और क्लर्क को ऊंचे श्रेणी का माना जाता था। झाड़ू देने वाला भंगी, चमड़े से वस्तु बनाने वाले चमार और मोची, नाई, बुनने वालों की भांति अन्य शारीरिक श्रम करने वालों को भी समाज में निम्न स्तर का माना जाता था। हिंदू धर्म के शास्त्रों, स्मृतियों, पुराणों ने इस प्रकार की भेदभावपूर्ण व्यवस्था को न केवल मान्यता प्रदान की थी, बल्कि वर्णव्यवस्था के चलते अस्पृश्यों को अच्छी आमदनी देने वाले व्यवसाय करने से धर्म के आधार पर रोक लगाई गई। जाति आधारित व्यवसाय तथा धंधे करने की सख्ती करके संपूर्ण उत्पादन प्रक्रिया से अस्पृश्य वर्ग को दूर रखा और उनके लिए निर्धारित व्यवसाय, पेशों को निम्न हीन बताकर छुआछूत जैसी निर्घृण प्रथा के निर्माण द्वारा उन्हें सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक परिवेश से निकाल बाहर कर दिया। बसवेश्वर धर्माधारित इसी व्यवस्था के विरोध में एक नया धर्म स्थापित कर रहे थे।

बसवेश्वर ने मानसिक और शारीरिक आदि सभी प्रकार के कार्य और व्यवसायों को समकक्ष मानकर सब को समान ही दर्जा दिया है। इसीलिए विभिन्न काम-धंधे और व्यवसाय करने वालों को बिना भेदभाव के समान समझते थे। निम्न से निम्नतर कार्य करने वाला व्यक्ति अगर उस कार्य को ईमानदारी और समर्पण भाव से करता है तो, वह किसी भी दृष्टि से हीन नहीं होता है। उसकी अपेक्षा जो केवल उच्च कहे जाने के कारण ऊँचा माना गया काम करता है। बसवेश्वर की दृष्टि में ऊँचा या नीचा कोई नहीं है-झाड़ू लगाने वाला, मोची, नाई, बुनकर, चर्मकार या किसान इन सब की कीमत और मर्यादा, पुजारी, शिक्षक के समान ही है। अप्पण्णा जो बसवेश्वर के विश्वासपात्र निजी सचिव थे, वे शरण बनने से पूर्व नाई जाति के ही थे।

बसवेश्वर स्वयं एक स्वतंत्र चिंतक थे। वे चाहते थे कि इनके द्वारा संस्थापित नूतन धर्म को स्वीकार करने से पहले उस धर्म के धार्मिक, दार्शनिक, नैतिक और सामाजिक सिद्धांत पक्ष को अच्छी तरह से सोच समझ लें।

इस प्रकार के स्वतंत्र जिज्ञासा को बढ़ावा देने के लिए 'अनुभव मण्डप' नामक एक अद्वितीय संस्था उनके शिष्य राम द्वारा स्थापित की गई। वह सत्य और अध्यात्मवादी अन्वेषकों की समिति थी। यहाँ पर अपनी जाति, व्यवसाय, धंधा, सामाजिक मर्यादा, स्त्री-पुरुष भेद-भाव को भुलाकर आपस में मिला करते थे। लक्कड़हारा, धोबी, दर्जी, मोची, किसान, विद्वान और मंत्री सभी पास-पास ही बिना किसी भेद-भाव के एक ही साथ बैठकर किसी ऊँच-नीच भाव के बिना सत्य और आध्यात्मिक चिंतन-मनन में समान रूप से ही भाग लेते थे। अपने-अपने व्यक्तिगत अनुभवों को सब के समक्ष रखकर उसका विश्लेषण करते थे, एक दूसरे के अनुभवों को अपनाते थे और सत्य के निष्कर्ष पर खरा न उतरने पर गलती पाई गयी तो अपनी गलतियों को मुक्त-मन से स्वीकार कर दूसरों से सीखने के लिए वे सदैव तैयार रहते थे। वे आध्यात्मिक, दार्शनिक, नैतिक और सामाजिक समस्याओं पर विचार-विमर्श और चर्चा किया करते थे। केवल इस प्रकार सावधानीपूर्ण विचार-विमर्श के पश्चात ही वे जीवन के मार्गदर्शनार्थ अनिवार्य एवं आवश्यक सिद्धांतों के विषय में एक सर्व-सम्मत निष्कर्ष पर पहुंचते थे।

वीरशैव पंथ के श्रेष्ठ रहस्यवादी कवि अल्लमप्रभु लगभग सन् 1162 में कल्याण पहुंचे और उन्हें अनुभव मण्डप का अध्यक्ष बनाया गया। तो भी बसवेश्वर ही अनुभव मण्डप के प्रेरक शक्ति थे। बहुत से शरणों ने अपने अनुभूत सत्य को, सरल भाषा में अभिव्यक्त करके, आम जनता तक अपनी वाणी पहुंचायी है। उनके पद कन्नड साहित्य में वचन के रूप में जाने जाते हैं। ये 'वचन' आज भी अपने विचारों की गहराई, पण्डित्य की गंभीरता और काव्यात्मकता के सौदर्य से आम जनता के बीच फैले हुए हैं।

9.6.3 सामाजिक-क्रांति : जातिगत समानता का आग्रह

बसवेश्वर का उद्देश्य जाति-वर्णभेदादि रहित स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्वाधारित समाज की रचना है। जो भी हो, वे किसी भी स्थिति में सामंतवादी प्रथा स्वीकारने के लिए तैयार नहीं थे। जो जाति-प्रथा, वर्णाश्रम-पद्धति, पारंपरिक काम धंधा-व्यवसाय पर आधारित और संपत्तिमूलक थी। बसवेश्वर चाहते थे कि जाति, धर्म, कर्म, व्यवसाय, लिंगभेदादि से रहित सभी लोग समान और समकक्ष हो। जीवन भर वे वर्णाश्रम की गहरी जड़ों के निर्मूलन और जड़ीभूत छुआछूत के उत्पादन में संघर्षरत रहे।

बसवेश्वर मंत्री होने के बावजूद भी मुक्तभाव और स्वच्छंदता से सभी लोगों के साथ मिल-जुलकर रहते और अछूतों की बस्ती में हो आया करते थे। वे शिवनागमगय्या के साथ भी

भोजन किया करते थे जो शरण (भक्त) बनने से पूर्व अछूत कुल के थे। इस प्रकार की घटनाओं से कल्याण के पारंपरिक समाज में हलचल पैदा हुई क्योंकि इस प्रकार की क्रांति के लिए समय परिपक्व नहीं था। जाति-रहित समाज की कल्पना तब कल्पनातीत थी। परंपराओं का निर्वाह करने वाले रुढ़िवादी और अंधविश्वासी लोगों ने शोर मचाना शुरू किया कि धर्म खतरे में है। कोंडी मचंन्ना और उसके सहयोगी, जो बसवेश्वर के मंत्री बनने और उनकी महती उपलब्धि से ईर्षाग्नि में तप रहे थे, तत्कालीन अवसर का लाभ उठाते हुए उन्होंने रुढ़िवादी परंपरावादियों को उत्तेजित किया। बसवेश्वर के विरुद्ध कहानियां गढ़कर बिज्जल को गढ़ी हुई कहानी सुनाते हुए धर्म की रक्षा की मांग करने लगे।

बसवेश्वर के विरुद्ध यह शिकायत की गई कि वे मंत्रित्व पद का दुरूपयोग कर उनके धर्म को समर्थन और बढ़ावा देने वाले हजारों शरणों को राज्य का राजस्व खर्च कर के भोजन खिला रहे हैं, इस प्रकार अफवाह फैलायी गई। बिज्जल जानता था कि यह शिकायत या दावा आधार रहित और झूठा है। फिर भी शिकायत की जांच-पड़ताल के बाद ही सार्वजनिक रूप से बसवेश्वर को निरपराधी और निर्दोष प्रमाणित किया गया।

शासक के लिए और सनातन परंपरावादियों के लिए यह विवादात्मक विषय तब बना जब कि मधुवरस की पुत्री कल्याणी का विवाह अस्पृश्य जाति के मोची हरलय्या के पुत्र शीलवंत के साथ हुआ। मधुवरस और हरलय्या दोनों ही बसवेश्वर के शिष्य थे। बसवेश्वर और दूसरे शरणों ने उस विवाह को अपना आशीर्वाद दिया। परंपरावादियों ने इस विवाह को प्रतिलोम (उच्च कुलीन स्त्री निम्न जाति के पुरुष के साथ होने वाला विवाह) और धर्म विरोधी माना। सनातनियों ने शोर मचाना शुरू किया कि इसके कारण वर्णसंकर (विभिन्न जातियों का अपवित्र मिलन) उत्पन्न हो गया है। अतः अपराधियों को सजा दी जाये। राजा से उन्होंने कहा कि उसका यह कर्तव्य है कि अपवित्र विवाह के कारण धर्म-संकट में फंसे हुए उस धर्म की वह रक्षा करे।

राजा बिज्जल ने बसवेश्वर से इस विवाह के औचित्य के विषय में प्रश्न किया। बसवेश्वर जो कि विवेकी और स्वतंत्र विचारक थे, इन्होंने यह कहते हुए कि मधुवरस और हरलय्या दोनों शरण बन चुके हैं, अतः उनमें जाति विषयक कोई भेद अब रहा ही नहीं और अगर ऐसा न भी हो तो भी अगर विवाह इच्छुक दोनों के ह्रदय परस्पर के मिलाप से एक और अभिन्न हो गये हैं तो ऐसी स्थिति में जाति, व्यवसाय, ऊँच-नीच मर्यादा विषयक कोई भी बाधा उनके रास्ते का रोड़ा नहीं बना। बसवेश्वर ने दृढ़तापूर्वक बिज्जल को सलाह दी कि सनातनियों के अनुचित तथा अन्यायपूर्ण विरोध के सम्मुख न घुटने टेकें और न ही झुकें।

परंतु, बिज्जल ने जनता की नाराजगी को पहचान लिया था, और अपनी सत्ता को बचाने के लिए बसवेश्वर की सलाह को अनसुनी कर के आज्ञा दी कि मधुवरस और हरलय्या को कठोर सजा दी जाय। उनकी आँखें निकाली गईं, हाथी के पैरों से बांधकर गलियों में मरणांत उन्हें घसीटा गया।

9.6.4 सनातनी परंपराओं का विरोध

संवेदनशील मनस्वी बसवेश्वर के लिए यह घृणित दुर्घटना दुःख का कारण थी। किसी भी स्तर की हिंसा उनके सिद्धांत के प्रतिकूल थी। जिस हिंसा के कृत्य को वहाँ उन्होंने देखा था वह उनके संवेदनशील मन की सहनीय शक्ति के परे की बात थी। वे अनुभव करने लगे कि कल्याण में उनके उद्देशित कार्य का अंतिम समय आ गया है उस घटना का पूर्ण दोष अपने पर लेते हुए कहा कि राजा को समझा न सके और दुर्घटना को घटित होने से रोक न सके। गहरे दुःख से भरे, कल्याण छोड़कर कूडलसंगम की ओर चल पड़े जहाँ पर उनके जीवन-निर्माण का प्रारंभिक काल बीता था।

बसवेश्वर की कूलसंगमेश्वर के प्रति अंतिम प्रार्थना है
मैंने तुम्हारी आज्ञा मानी, लो मुझको अब
गोदी में अपनी, लगा लो हृदय से मुझे, हे कूडलसंगम देव। '
बसवेश्वर कूडलसंगम में 1167 ई. में ऐक्य हो जाते हैं।

बसवेश्वर के कल्याण छोड़ जाने और अपने ही साथी शरण मधुवरस तथा शरण हरलय्या को जिस प्रकार की अन्यायपूर्ण और क्रूर हिंसात्मक सजा दी गई थी, इनसे कल्याण में रहे शरणों को गहरी चोट पहुंची। बसवेश्वर के कल्याण छोड़कर जाने और मधुवरस और हरलय्या की मृत्युदण्ड से कल्याण में चारों ओर अशांति, अव्यवस्था अनिश्चितता और घबड़ाहट का वातावरण फैल गया। कुछ लोग जो चालुक्य राजा के राजभक्त और निष्ठावन थे, वे चालुक्य राज्य के कुछ हिस्सों को बिज्जल द्वारा हथियाने के कारण नाराज थे, उन्होंने इस अवसर का लाभ उठाया और इनमें से जगदेव, मल्लन्ना और वोम्मन्ना ने राजा बिज्जल की हत्या कर दी।

दुर्भाग्य से राज परिवार के सदस्यों को गलत संदेह हुआ कि इस हत्या के पीछे शरणों का हाथ है। उसकी सेना ने शरणों पर हमला बोल दिया। इससे शरण कल्याण से भाग खड़े हुए। वे भावी संतति के लिए वचनों की रक्षा करना चाहते थे और वचनों की प्रतियों को सिर और पीठ पर लाद कर ले जाकर उन्हें नष्ट होने से बचाकर वे अपने उद्देश्य में बहुत हद तक सफल भी हुए।

कुछ शरण उलबी (इस समय कर्नाटक प्रांत के उत्तर कन्नड जिले में स्थित है) की ओर चन्नबसवण्णा के नेतृत्व में चले गये। कुछ श्रीशैल की ओर गये और कुछ वारंगल की ओर चले गये। (दोनों इस समय आंध्रप्रदेश में सम्मिलित हैं)। शेष बचे-खुचे शरण इधर-उधर कर्नाटक में फैल गये।

इस प्रकार इतिहास में एक बड़ा अध्याय समाप्त हुआ।

9.7 धार्मिक कर्मकांडों की आलोचना

बसवेश्वर विश्व के महानतम सुधारकों में से एक हैं। उनका सामाजिक सुधार आंदोलन चतुर्मुखी और अनेक विध सामाजिक पार्श्वों का स्पर्शी धार्मिक, सामाजिक, नैतिक, आर्थिक, साहित्यिक और बौद्धिक संबंधित सुधार है।

बसवेश्वर ने एक ऐसे धर्म की स्थापना के लिए अथक कठिन संघर्ष किया जो वैश्विक अपील वाला और ढांचे के स्वरूप से जाति रहित हो। उन्होंने शैव धर्म का सुधार किया। कोई भी मनुष्य किसी भी जाति का, व्यवसाय का सामाजिक स्तरीय पुरुष हो या महिला उनके इस नये धर्म को अपना सकते हैं। इस धर्म में प्रवेश करने के लिए पहली आवश्यकता है कि वह एकेश्वरवादी हो, अर्थात बहुदेववाद से भिन्न एक ही सर्वोच्च परम परमेश्वर में विश्वास रखने वाला हो और नानाविध देवी देवताओं की पूजा करने वाला न हो। दूसरी आवश्यकता यह है कि वह शरीर पर लिंगधारण करता हो। लिंग को ही 'इटलिंग' कहा जाता है कि जिसे वह नित्य प्रति पूजा करता हो। इटलिंग का धारण गुरु के हाथों से 'मंत्रोपदेश' के साथ होता है।

बसवेश्वर के अनुसार यह मानवीय देह ही स्वयं परमात्मा का घर है। इस कारण ईंट-पत्थर से निर्मित मंदिर मूर्ति की आवश्यकता नहीं। प्रत्येक अपने चित्त में उसका ध्यान कर सकता है। मन की एकाग्रता के लिए परमात्मा के प्रतीक की आवश्यकता है। इस प्रकार का प्रतीक ही 'ईंटलिंग' है, आकार में यह अंडाकार की तरह दीखता है और प्रतीक द्वारा अखिल विश्व को व्यक्त करता है। जो कि परमात्मा की कृति है। इटलिंग का निचला भाग समतल है

ताकि हथेली पर रखकर उसकी पूजा कर सकें। यह आकार में अंगूठे के बराबर का है। इसका रंग कृष्ण वर्ण का है जो कि 'दृष्टियोग' या 'तांत्रिकयोग' की साधना के लिए सहायक है। इटलिंग की पूजा सुविधानुसार जहाँ कीं भी, जब चाहे कभी भी कर सकते हैं।

बसवेश्वर ने इटलिंग की पूजा किसी पुजारी की मध्यस्थ के बिना करने की वकालत की है। इस प्रकार उन्होंने पूजा-विधि को सरल बनाया और पुजारियों द्वारा किये जा रहे शोषण को समाप्त किया। उनके अनुसार, तीर्थ यात्रा पर जाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

बसवेश्वर ने 'भक्ति' पर बहुत जोर दिया है। परमेश्वर की पूजा के लिए पूजक की भावनाओं की और भक्तिमय आवेगों की, मंत्रों की या उसकी भाषा की अपेक्षा नितांत आवश्यक है। बसवेश्वर के संशोधित धर्म में 'याग', 'होम' या 'हवन' के लिए कोई जगह नहीं है।

बसवेश्वर के मतानुसार यह जगत् मिथ्या न होकर 'सत्य' है। जीवन में भागने के बजाय, जीवन को जिम्मेदारी के साथ जिये और इस पृथ्वी में व्याप्त परमात्मा की सत्ता को अनुभव करें। व्यक्ति को चाहिए कि वह जीवन को दुःख और निराशा की दृष्टि से न देखें। उनके धर्म का मूलतत्व है, 'शिव की संतृप्ति और संतुष्टि के योग्य इस जगत में जीवन जीना चाहिए और परलोक में भी स्वीकार हो सके ऐसा जिये।' मुक्ति की प्राप्ति इसी धरती पर इसी देह की सहायता से संभव है।

बसवेश्वर के दर्शन की प्राणशक्ति सक्रियता है, जिसका अर्थ है, समर्पित कर्मठता जो कर्ता को आनंदित और इस संसार को समृद्धिशाली बना सके। उन्होंने मानवीय जीवन के बहुमूल्य गुणों को यथोचित स्थान दिया है। उनका धर्म संन्यास या वैराग्य का समर्थन नहीं करता।

धर्म का संशोधन और परिमार्जन करते हुए, नैतिक सिद्धांत एवं सामाजिक जीवन को एक दूसरे से गुंथते हुए बसवेश्वर ने भौतिक और आध्यात्मिक जगत दोनों को एक-दूसरे से पृथक न करके दोनों को एक ही स्तर पर संयोजित किया है। बसवेश्वर का जीवन साधारण लोगों के उद्धार के लिए समर्पित और निछावर था। वे चाहते थे कि साधारण लोग सामाजिक पारंपरिक विघ्न-बाधाओं के बंधन से मुक्ति पा लें, स्वयं उनके जीवन में उन्नत जीवन जीने की आशा की ज्योति जले। उन्होंने जनता को जीवन की दृष्टि प्रदान की। उन्होंने जनता की भाषा में उपदेश दिया। उनके उपदेशों में जनता को आकृष्ट करने की अपार शक्ति है। जनता उन्हें अपना हितैषी समझकर उनकी अनुगामी बन गयी।

9.8 सामाजिक चेतना का विस्तार

बसवेश्वर एक श्रेष्ठ समाज-सुधारक थे। उन्होंने घोषित किया कि सभी मनुष्य जन्म से समान हैं और जाति, धर्म पर आधारित सामाजिक असमानता अन्यायपूर्ण है। वे गरीब, दीन-दलित और अछूतों के योद्धा थे और उनके समर्थक थे। उन्होंने सामंत और पुरोहितशाही आधारित वर्णाश्रम और अस्पृश्यता के विरोध में निरंतर संघर्ष किया तथा सभी प्रकार के काम-धन्धों और व्यवसायों के प्रति उनकी दृष्टि समानता की थी।

9.9 स्त्री मुक्ति के प्रवर्तक बसवेश्वर

बसवेश्वर ने महिलाओं की दशा सुधारों के लिए जो कार्य किया है वह स्मरणीय और अनुकरणीय है। कट्टरपंथी हिंदुओं का यह विश्वास था कि स्त्री-जाति विद्या प्राप्ति के लिए सक्षम नहीं है और किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता उन्हें नहीं दी जानी चाहिए। परिणामस्वरूप,

स्त्रियों का कार्य क्षेत्र उनके घर तक ही सीमित था। अपने व्यक्तित्व को विकसित करने का मौका उन्हें प्राप्त नहीं था।

बसवेश्वर ने अनुभव किया यह सब अन्यायपूर्ण है। उन्होंने स्त्रियों को उत्साहित तथा प्रेरित किया कि उनके चारों ओर कसे हुए परंपराबद्ध बंधनों को तोड़कर वे बाहर आये और सामाजिक कार्य-कलापों में भागीदार बनें। उन्होंने स्त्रियों को बुद्ध के संघ जैसी स्वतंत्रता और धार्मिक साधना में समान अधिकार दिया। स्त्रियाँ अनुभव मंडप के विचार-विमर्श में, चर्चा में सक्रिय भाग लेती थीं। कइयों ने वचनों की भी रचना की है। यह प्रथम अवसर था जब कि कन्नड साहित्य के इतिहास में स्त्रियों ने साहित्यिक क्रियाकलापों में सक्रिय रुचि दिखाई हो। उनमें से 'अक्कमहादेवी' और 'मुक्तायक्का' आदि बड़ी रहस्यवादिनी बनी हैं और आध्यात्मिक उपलब्धि के शिखर तक पहुँची हुई हैं।

बसवेश्वर ने विधवा पुनर्विवाह को प्रोत्साहित किया। गरीबी के कारण रोटी कमाने के लिए जो वेश्यावृत्ति जैसी असम्मानजनक धंधों में संलग्न थीं, उनको अनेक विभिन्न व्यवसायों में लगाकर पुनर्स्थापित करने का प्रयत्न किया। उन्हें विवाह के लिए प्रोत्साहित किया। उनमें से कुछ ने अनुभव मण्डप में आध्यात्मिक-प्रशिक्षण भी किया है। स्वयं वेश्या होने पर भी 'सूले संकव्वे' अनुभव मंडप की चर्चा में भाग लेती थीं तथा वचनों की रचना करती थीं। (बुद्ध की शिष्या)

बसवेश्वर ने नारी-उद्धार और नारी मुक्ति के लिए जो उल्लेखनीय कार्य किया है, वह हमारे देश के इतिहास में ही अनुपम और अपूर्व है। यह परंपरा बुद्ध द्वारा स्थापित संघ में स्त्री भिक्खुनियों के प्रवेश से जुड़ती है।

9.10 बसवेश्वर के आर्थिक-सुधार

बसवेश्वर ने कायक और दासोह मार्ग के द्वारा आर्थिक सुधार का कार्य किया है।

कायकः 'कायक' के विषय में पहले ही विचार किया गया है। 'कायक' के अनुसरण से समाज की समस्यायें 'गरीबी' और 'बेकारी' सुलझ जाती हैं।

दासोहः बसवेश्वर के 'आर्थिक दर्शन' के अनुसार 'दासोह' कायक का परिपूरक है।

'दासोह' का शाब्दिक अर्थ है 'मैं सेवक हूँ।'

बसवेश्वर के 'दासोह' दर्शन के अनुसार, प्रत्येक को अपना जीवन सीधा-सादा व्यतीत करना चाहिए और अपनी कमाई या संपत्ति में से थोड़ा सा भाग अलग रखें एवं उसे गरीब और कमजोर लोगों के कल्याण और समृद्धि के लिए समाज को दान में दें। इस विषय में उन्होंने स्वयं उदाहरण स्थापित किया। मंत्री होने के बावजूद भी वे सीधा-सादा जीवन व्यतीत करते थे और अपनी कमाई का बड़ा भाग 'महामने' की व्यवस्था के (जहाँ दासोह होता था) लिए देते थे, जो कि सुधारात्मक कार्यकलापों का केंद्र स्थान था। वे संपत्ति जमा करने के विरुद्ध थे।

बसवेश्वर का 'दासोह' दर्शन समाज की आर्थिक असमानता का निवारण करेगा यहाँ कुछ हद तक तो कम करेगा ही उनके एक वचन में ऐसा कहा गया है-

'क्या अन्न का दाना देख, कौआ अपने समूह को बुलाएगा नहीं?
क्या एक निवाला देख मुर्गा अपने कुल को बुलाएगा नहीं?
शिव भक्त बन, भक्ति पक्ष का न रहा। तो वह
कौवे और मुर्गों से भी निकृट है, कूडलसंगम देव।

बसवेश्वर के दासोह दर्शन के अनुसार जो दासोह कर रहा है उसके मन में संरक्षक की अहं भावना न पनपे क्योंकि वह तो केवल अपने कर्तव्य के पालन और उसकी पूर्ति में लगा है।

9.11 आभिजात्य भाषा का विरोध: जनसामान्य की भाषा का स्वीकार

परंपरानुसार संस्कृत हिंदूदर्शन और दूसरे धार्मिक चिंतन धारा की एकमात्र भाषा रही है। केवल थोड़े से आभिजात्य लोग ही संस्कृत को जानते और समझते थे। मनुस्मृति जो कि हिंदूधर्म के विधिविधान के रूप में मनु द्वारा प्रस्तुत किया गया हिंदूग्रंथ है। इसके अनुसार शूद्र अतिशूद्रों और स्त्री को शिक्षा ग्रहण करने के अधिकार से वंचित किया गया, साथ ही संस्कृत में रचित श्लोक और ऋचाओं को सुनने या उच्चारित करने पर कानों में पिघलता शीसा डाले जाने और जीव्हा को उखाड़ने की कठोर शिक्षा का प्रावधान रखा गया। इस क्रूरतम कानून के भय के कारण अस्पृश्य और स्त्री वर्ग को शिक्षित होने का अवसर नहीं दिया गया। बसवेश्वर ने संस्कृत भाषा में संरक्षित 'ज्ञान' के एकाधिकार को समाप्त कर अपनी विचारधारा को वचनों के जरिए बंद दरवाजों तक और सामान्य स्त्री-पुरुषों तक उनकी ही भाषा में सरलतम रूप में रचकर उन तक पहुंचाया।

बसवेश्वर से पूर्व, कवि जो कि सामान्यतया राजाओं से संरक्षित होते थे, कविताओं की रचना या तो राजाओं की प्रशंसा में करते थे या अपनी विद्वता के प्रदर्शनार्थ करते थे। कविता संस्कृत की अबूझ भाषा की बोझ से दबी हुई रची जाती थी, साधारणतया सामान्य लोग उसे समझ नहीं पाते थे।

साहित्यिक पुरानी कन्नड कविता की भाषा और सामान्य बोलचाल की भाषाओं के मध्य एक कृत्रिम दूरी पैदा हो गई थी।

बसवेश्वर के उपदेश वचनों के स्वरूप में विद्यमान हैं। वचनों का शाब्दिक अर्थ है तत्काल स्फुरित और उच्चरित शब्द। उनकी रचना सरल आडंबरहीन और बोल-चाल की कन्नड भाषा में की जाती थी और जनता उन्हें आसानी से समझ लेती थी। वे वचन बसवेश्वर और अनेक अनुयायियों के जीवन क्षेत्र के व्यापक अनुभवों, अंतदृष्टि, परिज्ञान और सैद्धांतिक आदर्शों के सम्मिलित स्वरूप हैं। बसवेश्वर और अन्य वचनकारों के रचित-वचनों से कन्नड साहित्य धनी और समृद्ध हुआ। बहुत से वचन भाषा की दृष्टि से सुगम दिखाई देते हैं तो भी गंभीर, उच्च विद्वत्तापूर्ण विचार और अनुभवों को तथा भाव-काव्यात्मक सौंदर्य को व्यक्त करते हैं।

पुरातन कालीन परंपरागत वैदिक चिंतन लोकाभिमुख नहीं था बल्कि लोक विरोधी था। जनसामान्य को ज्ञान की परंपरा से दूर रखने के लिए संस्कृत भाषा को देवभाषा का दर्जा देकर, उसमें रचित ज्ञान से सर्वसामान्य जन को वंचित रखा। इसमें धर्म के उपयोग द्वारा भय का वातावरण निर्मित किया गया तथा निर्धारित विषयों को तोड़ने पर जघन्य सजाओं का प्रावधान किया। बौद्ध परंपरा का निर्वाह बसवेश्वर के द्वारा करने पर ही ज्ञान को सर्वसामान्य तक पहुंचाने का अवसर मिला। बसवेश्वर तार्किक विचारवादी और स्वतंत्र चिन्तक थे। भारत में स्वतंत्र चिन्तन पंरपरा को बौद्ध धर्म के उदय काल में ही बढ़ावा मिला।

आर्थर मिल के अनुसार बसवेश्वर भारत के प्रथम स्वतंत्र विचारक थे। उन्होंने जिज्ञासा से प्रश्न करने और स्वतंत्र विचार-विमर्श करने का अवसर प्रदान किया। बसवेश्वर ने परंपरागत पुराने विश्वास और आचरणों के बारे में प्रश्न उठाया और तर्क प्रस्तुत किया। अंधविश्वास, वहम-भ्रम और अर्थहीन संस्कार और रिवाज से लोगों को मुक्त किया।

बसवेश्वर ने तर्क-सहित विवेकहीन असमता, वर्णाश्रम, अस्पृश्यता, नारी को हीन दर्जा, बहुदेववाद, पुजारी के माध्यम से की जाने वाली पूजा, याग-यज्ञ, होम और हवन, स्वर्ग और नरक आदि में विश्वास की भावना को अस्वीकार और अपने चिंतन-विचार परंपरा से दूर रखा।

ज्योतिष की भविष्यवाणी, शकुनापुराण की भावना ने जनता को जकड़ रखा था। साल के निश्चित महीने और दिन के निश्चित घंटे इसी प्रकार नक्षत्रों का स्थान मान तथा उनका

परिवर्तन कुछ लोगों के लिए शुभकारी तो जब कि कुछ लोगों के लिए अशुभकारी माना जाता था। किसी उद्योग, या काम को प्रारंभ करने या जारी रखने के लिए या धार्मिक अनुष्ठान या संस्कार के आचरण के लिए भी लोग इन पर आश्रित थे।

लोगों को ज्योतिष में अचल विश्वास था। इसी प्रकार किसी भी कार्यकलाप को आरंभ करने से पूर्व कुछ शकुनों को शुभकारक और कुछ को अशुभकारक मानते थे। ज्योतिष और शकुन या अपशकुन में विश्वास रखने से कर्म-संस्कृति और उद्योग करने की साहसिक तथा उत्साहमयी भावना पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है।

बसवेश्वर लोगों को ज्योतिष और शकुनापशकुन के शिकंजों से छुड़ाने के लिए प्रयत्नशील थे। उन्होंने निडरता से घोषित किया कि प्रत्येक महीना, दिन या घंटा अच्छे कार्य के संपादन के लिए शुभ और मंगलदायक हैं ज्योतिष और शकुनापशकुन पर विश्वास रखना विवेकहीन और तर्करहित है।

9.12 सारांश

बारहवीं शताब्दी में बसवेश्वर द्वारा स्थापित विरशैव पंथ और शीवभक्तों के वचन आन्दोलन ने समता का संदेश फैलाकर कर्नाटक तथा आस–पास के प्रदेशों में समन्वय का नया युग प्रारंभ किया था। अलौकिक शक्ति के अस्तित्व पर बसवेश्वर ने प्रश्न चिह्न लगाकर लौकिक जगत में सर्वसमभाव के समतावादी समाज निर्मिति में उन्होंने बढ़–चढ़कर भूमिका निभाई। ब्राह्मणवाद के विरोध में सर्वप्रथम विद्रोह करने वाले बसवेश्वर जन सामान्य में अतीशय लोकप्रिय हुए। छुआछूत, जाति भेदभाव को मिटाने में उनकी अग्रणी भूमिका रही। राजदरबार में दिवान के पद पर कार्यरत बसवेश्वर ने बहुजन के योग्य और लाभप्रद आर्थिक नीति निर्धारण के द्वारा समताबोध का प्रचार–प्रसार करके विघटनकारी शक्तियों का विरोध किया। स्त्री–पुरुष समानता को मात्र सिद्धांत के स्तर पर नहीं बल्कि व्यवहार में लागू करने का श्रेय भी उन्हीं का है। वचन साहित्य निर्मिति में स्त्री वचनकारों का योगदान रहा है। बुद्ध की परंपरा, जो की भिक्षुणी संघ द्वारा स्त्री को ज्ञान की परंपरा से जोड़ने का क्रांतिकारी कदम था, को आगे बढ़ाते हुए बसवेश्वर ने 'अनुभव–मंडल' में स्त्रियों को बराबरी का सम्मान देकर और मंडल में प्रवेश दिया। कन्नड़ के कवि कवयित्रियाँ शिवशरण और शिवशरणियाँ कहलाती है। सैंकड़ों कवयित्रियों की रचनाओं का संदर्भ वचन साहित्य में प्राप्त होता है। वचन साहित्य के सृजन में लोकभाषाओं को प्राधान्य मिला, संस्कृत का निषेध किया गया। पोथी पुराण, अंधविश्वास, मिथ्या आडंबर और ब्राह्मणों के वर्चस्व को पूर्णरूपेण नकारा गया जिससे पुरातनपंथी वर्ग की ओर से बसवेश्वर तथा अन्य समतावादी भक्त कवियों का समय–समय पर विरोध किया गया। क्योंकि ब्राह्मणवादी धर्म, वर्ण, जाति के विरोध में बसवेश्वर ने सभी निम्न मानी गई जाति के संतों को अनुभव मंडल में प्रवेश देकर वर्ण–जातिवाद का विरोध किया था।

इकाई 10 नाथ पंथ

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 नाथ साहित्य : परिचय व ऐतिहासिकता

10.3 नाथ साहित्य की वैचारिकी

10.4 राजनीतिक परिवेश एवं धार्मिक-सांस्कृतिक स्थितियाँ

10.5 बौद्ध दर्शन का प्रभाव

10.6 दलित दर्शन की निर्मिति में नाथ पंथी संतों का योगदान

10.7 सारांश

10.8 शब्दावली

10.0 उद्देश्य

यह इकाई भारत की चिंतन परम्पराएँ और दलित साहित्य पाठ्यक्रम की दसवीं इकाई हैं।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भारत के नाथ संप्रदाय को ठीक से जान सकेंगे;
- आप तत्कालीन राजनीतिक धार्मिक व सांस्कृतिक स्थितियों में नाथ संप्रदाय की भूमिका को भी पहचान सकेंगे;
- नाथ संतों की समतावादी भूमिका से भी अच्छी तरह परिचित हो सकेंगे;
- बौद्ध दर्शन का नाथ संप्रदाय पर कितना गहरा प्रभाव था इसका समाकलन कर सकेंगे; और
- नाथ संप्रदाय की दलित दर्शन की आधारभूमि निर्मिति में क्या भूमिका थी, उसने बाद के दलित आंदोलन को कितनी वैचारिक मदद दी, इसका विवेचन विश्लेषण कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

किसी भी समाज की गत्यात्मकता और प्रगतिशीलता उस समाज में किये गये मानवीय हस्तक्षेपों से तय होती है। भारतीय समाज में मौजूदा अमानवीय सत्ता के खिलाफ़ सतत् संघर्ष रहा है। वैदिकी और ब्राह्मणवादी वर्णवाद के खिलाफ़ भी लगातार विद्रोह का ऊर्जस्वी स्वर गूँजता रहा है। आज जो दलित साहित्य हम आप देख रहे हैं उसकी जड़े काफी गहरी हैं। इसकी सत्ता से असहमति की शुरुआत उस समय हुयी जब वृहस्पति ने वेदों की सत्ता पर सवाल उठाए। यही परंपरा आगे चल कर बुद्ध, चार्वाक, सिद्धों, नाथों व मध्यकालीन

संतों से सुदृढ़ होती हुई आधुनिक काल में फुले, पेरियार और बाबासाहेब आंबेडकर तक आयी। इसी आधारभूमि पर आज का दलित साहित्य मजबूती से खड़ा है।

नाथ साहित्य भारत में मध्यकालीन संतों के क्रान्तिकारी आंदोलन का बीज साहित्य है। इसी आधार पर संतों का आंदोलन विकसित हुआ। कबीर जैसे वर्णाश्रम विरोधी क्रान्तिकारी की आवाज़ में जो धार है वह नाथ साहित्य की देन है। नाथ साहित्य ही भारत में मध्यकालीन शूद्रों के एकेश्वरवादी आंदोलन का जनक है और जैसा कि सर्वविदित है कि आप के दलित साहित्य में सबसे बड़ा वैचारिक आधार मध्यकालीन संतों का है। अतः इसकी महत्ता काफी है। इस इकाई को पढ़कर आप दलित साहित्य की आधारभूमि को समझ सकेंगे।

आइए, जानते हैं कि नाथ साहित्य क्या है।

10.2 नाथ साहित्य : परिचय व ऐतिहासिकता

सिद्धों का काल 800 से 1200 ई. तक माना जाता है। ये संख्या में 84 थे। राहुल सांकृत्यायन ने नाथ पंथ को सिद्धों की परंपरा का ही विकसित रूप माना है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने नाथ पंथ के चर्मोत्कर्ष का समय बाहरवीं से चौदहवीं शताब्दी के अंत तक माना है। उनका यह भी कहना है कि नाथ पंथ से ही संत मत का विकास हुआ। वास्तविकता यह है कि सिद्धों के समय से ही नाथ पंथ अस्तित्व में था। दूसरे शब्दों में, सिद्ध और नाथ समानान्तर थे तथा सूची बनाने वालों ने नाथों को भी सिद्धों में ही रखा है। स्वयं नाथों ने भी अपने को सिद्ध ही कहा है।

चौरासी सिद्धों में छियालिसवें सिद्ध जालन्धरपा हैं, जिन्हें नाथ पंथ का प्रवर्तक माना जाता है। इसलिये इन्हें आदिनाथ भी कहा जाता है। अन्य सिद्धों में मीनपा, गोरक्षपा, नागार्जुन, कण्हपा, चर्पदीपा और कंतालीपा भी नाथ-पंथी माने जाते हैं।

नाथ पंथ पर विचार करने से पूर्व सिद्ध कौन थे, यह जानना ज़रूरी है। वास्तव में सिद्ध परंपरा या पंथ वज्रयान का विकास है। बौद्धधर्म की महायानी शाखा से जब वज्रयान निकला, जिसने तन्त्र-मंत्र सिद्धान्तों, अलौकिक सिद्धियों और मिथ्या दृष्टियों को अपनाया, तो उसके विरोध में, जिस प्रबुद्ध वर्ग ने वैचारिक विद्रोह किया, वे सिद्ध कहे गये। सभी सिद्ध कवि थे और सामाजिक विद्रोही थे। सिद्ध सरहपाद को इस नयी धार्मिक परंपरा का आदि गुरु माना जाता है। सरह बौद्धधर्मी थे जिनका भिक्षु नाम राहुल भद्र था। उनका नाम सरह तब पड़ा, जब उन्होंने शर (तीर) बनाने वाली लड़की से विवाह कर उसी के साथ रह कर स्वयं सरकंडों से तीर बनाने का काम करने लगे। वह नालन्दा में विद्यार्थी थे और वहीं अध्यापक भी हो गये थे। उन्हें वहां भिक्षुओं में बहुत-सारा ढोंग दिखायी दिया। उन्होंने देखा कि सामंतों के धन पर पलने वाले भिक्षु सामंतवाद और ब्राह्मणवाद के हित में बुद्ध के वचनों की आलौकिक व्याख्याएं कर उन्हें विकृत करने का काम कर रहे हैं, जो जनता के साथ विश्वासघात था। राहुल भद्र गृहस्थ होकर तीर बनाकर श्रम करके जीविका कमाने लगे। सरहपाद (राहुलभद्र) की इस विद्रोही भूमिका से ही सिद्ध मार्ग की शुरुआत होती है।

सरहपाद ने वेद, शास्त्र, मन्त्र-तन्त्र, यज्ञ, आडम्बर, पाखण्ड, ब्राह्मणवाद और वर्णव्यवस्था के खिलाफ जबरदस्त विद्रोह किया। संसार शून्य नहीं है, वे ऐसा मानते थे और चित्त की विशुद्धि तथा देह में ही तीर्थों के होने पर जोर देते थे। इस प्रकार यह एक ऐसी भौतिकवादी धारा थी, जो विचारों में बुद्ध का अनुसरण करती थी।

सिद्धों की दो विशेषताएं थीं। एक, वे सभी कवि थे अथवा सिद्ध बनने के लिये कवि होना अनिवार्य शर्त थी और दो, उनमें जातिभेद नहीं था। उनका संघ वर्ग और जाति विहीन था। यह ब्राह्मणवादी व्यवस्था पर करारी चोट थी। चौरासी सिद्धों में 28 सिद्ध शूद्र जातियों के हैं और चार स्त्रियां हैं। शेष में ब्राह्मण, क्षत्रिय, कायस्थ आदि अन्य जातियों के सिद्ध हैं। भारतीय चिन्तन में यह पहली धारा थी, जिसमें जातिभेद नहीं था। दूसरे शब्दों में यह वह धारा थी, जिसमें किसी भी जाति का कोई वर्चस्व नहीं था, जिसमें जांति नहीं, गुण महत्वपूर्ण था। उसमें गुंडरिया जैसे चिड़ीमार, चमारिया जैसे चमार और अचिंतिया जैसे लकड़हारा ही नहीं, मणिभद्र जैसी घर की दासी तक सिद्ध रचनाकारों में शामिल थी। यह भी उल्लेखनीय है कि सभी सिद्ध कवि लोक भाषाओं के कवि थे, संस्कृत के नहीं। यह अपने आप में एक बड़ा विद्रोह था परंपरागत ज्ञान मीमांसा से।

नाथ पंथ सिद्ध परंपरा से कितना भिन्न था, यह देखने से पहले यह जान लें कि नाथ कौन थे? जैसा कि कहा गया, नाथ-पंथ के आदि प्रवर्तक आदिनाथ माने जाते हैं। सिद्धों की सूची में इनका नाम जालन्धरपाद है, जो ब्राह्मण बताये जाते हैं। इनके शिष्य मछेन्द्रनाथ थे, जो मछुवे या मछुवारे थे। इनके पिता मीनपा भी सिद्ध थे, जो नाथ पंथ में आकर मीननाथ हुए। इन्हीं मछेन्द्र या मत्स्येन्द्र नाथ के शिष्य गोरखनाथ थे, जिन्होंने नाथ संप्रदाय को एक क्रान्तिकारी आंदोलन का रूप दिया। नाथपंथ में गोरखनाथ का वही स्थान है, जो वेदान्त में शंकर का है। आदि शंकराचार्य यदि भारत के कोने-कोने में विख्यात हैं,तो गोरखनाथ की ख्याति भारत की सीमाओं के बाहर तक है। दोनों में अन्तर यह है कि यदि शंकर कुछ विशिष्ट हिन्दुओं के धर्मगुरु हैं, तो गोरखनाथ भारत की विशाल जन सामान्य के पूज्य देव हैं। यदि गोरखनाथ न होते, तो नाथपंथ आगे नहीं बढ़ता।

लेकिन जिन मछेन्द्रनाथ के गोरखनाथ शिष्य थे, उनका नाम हमें चौरासी सिद्धों की सूची में नहीं मिलता, जबकि उनके पिता मीननाथ आठवें सिद्ध हैं। मीननाथ (या मीन पा) राजा देवपाल के समकालीन थे, जिनका समय 809 ई. से 849 ई. है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मीनपा और मछेन्द्रनाथ नौं वीं शताब्दी के सिद्ध कवियों में थे। सिद्ध-सूची में मीनपा के ठीक बाद गोरक्षपा अर्थात् गोरखनाथ का नाम आता है। इसके बाद चोरंगिपा का नाम है, जो गोरखनाथ के गुरु भाई थे। अतः सवाल यह है कि सूची में गुरुभाई का नाम है; पर गुरु का ही नाम नहीं है, क्यों? कहीं ऐसा तो नहीं कि मीननाथ और मछेन्द्रनाथ दोनों एक ही हों? मछेन्द्रनाथ ही मीननाथ हो सकते हैं, क्योंकि दोनों नामों का शाब्दिक अर्थ लगभग मछली या मछुआरा ही होता है। मछेन्द्रनाथ नाथ परंपरा के प्रथम आचार्य माने जाते हैं। वे गोरखनाथ के लिये ईश्वर तुल्य थे। गोरख उन्हें अपनी वाणी में बहुत आदर से स्मरण करते हैं।

यथा-

(1) भणंत गोरानाथ मछींद्र ना दासा
(मछेंद्र का दास गोरख कहता है)

(2) कथंत गोरानाथ मछींद्र ना पूता
(मछेन्द्र का पुत्र गोरखनाथ का कथन है)

(3) मछींद्र प्रसादै जती गोरा बोल्या
(मछेन्द्र के प्रसाद से यती गोरख बोलता है।)

(4) गोरा रहीला मछिंद्र ठांई
(गोरख मछेन्द्र की शरण में आया)

(5) मछंदर तुम्हे ईश्वर के पूता
(मछन्दर तुम तो ईश्वर के पुत्र हो) (नाथ सम्प्रदाय)

ऐसे महान मछेन्द्रनाथ को सिद्धों की सूची में शामिल न किया जाना आश्चर्य की बात है। इसलिये बहुत सम्भव है कि मीनपा ही मछेन्द्रनाथ हों।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रन्थ 'नाथ संप्रदाय' में मछेन्द्रनाथ के एक ग्रन्थ 'कौलज्ञान निर्णय' का उल्लेख किया है। उनके अनुसार, इस ग्रन्थ में आचार्य का नाम कई प्रकार से लिखा गया है, जैसे- मच्छघ्नपाद, मच्छेन्द्रपाद, मत्स्येंद्रपाद और मीनपाद। इससे भी यही पुष्टि होती है कि ये चारों नाम एक ही आचार्य के हैं। द्विवेदी जी मच्छेन्द्रनाथ को ब्राह्मण मानते हैं, जिनका शुद्ध नाम मत्स्येंद्रनाथ था और एक विशेष कारण से उनका नाम 'मत्स्यघ्न' पड़ गया था। यह विशेष कारण एक दन्तकथा पर आधारित है, जो 'कौलज्ञान निर्णय' के अनुसार इस प्रकार है- 'भैरव और भैरवी चन्द्रद्वीप में गये हुए थे। वहां कार्तिकेय उनके शिष्य रूप में पहुंचे। अज्ञान के प्राबल्य से उन्होंने 'कुलागम शास्त्र' को समुद्र में फेंक दिया। भैरव ने समुद्र में जा कर मछली का पेट फाड़कर उस शास्त्र का उद्धार किया। इस कार्य से कार्तिकेय बहुत क्रुद्ध हुए। उन्होंने एक बड़ा-सा गड्ढ़ा खोदा और छिपकर उस शास्त्र को दुबारा समुद्र में फेंक दिया। इस बार एक प्रचण्डतर शक्तिशाली मत्स्य ने उसे खा लिया। भैरव ने शक्ति-तेज से एक जाल बनाया और उस मत्स्य को पकड़ना चाहा। पर, वह प्रायः उतना ही शक्ति-सम्पन्न था, जितना स्वयं भैरव थे। हार कर भैरव को ब्राह्मण वेश त्याग करना पड़ा। उस महामत्स्य का उदर फिर से विदीर्ण करके उन्होंने 'कुलागम शास्त्र' का उद्धार किया।' (नाथ सम्प्रदाय, पृष्ठ 43)

इस कथा में, शास्त्र का भक्षण करने वाले मत्स्य स्वयं भैरव हैं, जो मछली बन कर समुद्र में घुसे थे। इस प्रकार की कहानियों का आज के वैज्ञानिक युग में कोई अर्थ नहीं है। ब्राह्मणवादी विद्वानों ने प्रायः इस दम्भ में, कि सिर्फ ब्राह्मण ही परमज्ञानी और गुरु हो सकता है, दलित जातियों की प्रतिभाओं को ब्राह्मण सिद्ध करने के लिये इसी तरह की अवैज्ञानिक कहानियाँ गढ़ी हैं। अतः इस कहानी में कोई सार नहीं है, क्योंकि मनुष्य का मछली बनना और मछली का मनुष्य बनना एक मूढ़ विश्वास है।

इस तरह के मूढ़ विश्वास की अनेक कहानियां मछेन्द्रनाथ और गोरखनाथ के बारे में प्रचलित हैं। एक कथा के अनुसार, गोरखनाथ के गुरु मीननाथ पथ से विमुख होकर कदली देश में सौलह सौ सेविकाओं द्वारा परिव्रता मंगला और कमला नामक पटरानियों के साथ विहार करने लगे थे। वहां योगी का जाना निषिद्ध था। केवल नर्तकियां ही मीननाथ का दर्शन पा सकती थीं। तब गुरु के उद्धार के लिये गोरखनाथ ने नर्तकी का रूप धारण किया और मीननाथ के सामने प्रकट हुए। उन्होंने गुरु को पूर्ववर्ती बातों का स्मरण कराया और महाज्ञान बताया। मीननाथ को होश आया और गोरखनाथ उन्हें लेकर विजय नगर में लौटे। (वही, पृष्ठ 45-46)

इस कथा से पता चलता है कि गोरखनाथ के गुरु मीननाथ थे और वह महाज्ञान से विमुख होकर स्त्रियों के साथ रहने लगे थे। गोरखनाथ ने भी अपनी बानी में अपने गुरु मछेंद्रनाथ के महाज्ञान से विमुख होने और स्त्रियों के साथ भ्रमण करने का उल्लेख किया है। इससे पता चलता है कि जो मीननाथ हैं, वही मछेंद्रनाथ हैं।

गोरखनाथ ने अपने गुरु के सम्बन्ध में अपने काव्य में क्या वर्णन किया है, यह देखना जरूरी है। यह पहले बताया जा चुका है कि वह सब-कुछ छोड़कर मछेंद्रनाथ की शरण में गये थे और उन्हें ईश्वर का पुत्र मानते थे। इसके बावजूद उन्होंने अपने गुरु को स्त्रीसंसर्ग से दूर रहने का उपदेश भी किया है।

छांटै तजौ गुरु छांटै तजौ, तजौ लोभ मोह माया।
आत्मा परचै राषौ गुरुदेव, सुन्दर काया।

कांन्हीं पाव भेटीला गुरु, विद्यानग्र सैं।
ताथैं मैं पाइला गुरु, तुम्हारा उपदेसैं।।
एतैं कछू कथीला गुरु सबै भैला भोलै।
सर्व रसषोईला गुरु बाघंनी चै षोलै।।
नाचत गोरानाथ घूंघरी चै घातैं।
सर्व कमाईषोई गुरु, बाघंनी चै राचैं।।
रस-कुस बहि गईला, रहि गई छोई।
भगत मछिंद्रनाथ पूता, जोग न होई।। (नाथ संप्रदाय)

इस पद में, गोरखनाथ कहते हैं - हे गुरु लोभ-मोह-माया त्याग दो। आत्मा का परिचय रखो गुरुदेव, यह सुन्दर काया उसी से है। विद्या नगर में कान्हपा से भेंट हुई थी, उन्हीं से मुझे तुम्हारी खबर मिली। जो कुछ कहा गया है, वह सब आपके भोले स्वभाव से हुआ है। आपने बाघनी (स्त्री) की गोद में सारा रस खो दिया है। गोरखनाथ कहते हैं कि घुंघरू के स्वर के साथ नाचकर आपने सारी कमाई खो दी है। सारा रस बह गया है, सिर्फ छोई (गन्ने की खोई जैसी चीज) रह गयी है। मछिंद्रनाथ का पूत यह भगत कहता है कि यह योग नहीं है।

इस पद में कान्हया का नाम आया है, जो सत्रहवें सिद्ध माने जाते हैं। कथा है कि एक बार गोरखनाथ बकुल वृक्ष के नीचे ध्यान कर रहे थे। उसी समय कान्हपा उनके सिर पर से उड़ते हुए आकाश मार्ग से कहीं जा रहे थे। कान्हपा ने गोरखनाथ को देखकर कहा 'बड़े सिद्ध बने हो, कुछ गुरु का भी पता है कि वे कहां हैं?' उन्होंने पूछा- 'कहां हैं?' कान्हपा बोले- 'कदली देश में महाज्ञान भूल कर स्त्रियों के साथ विहार कर रहे हैं। उनकी शक्ति समाप्त हो गयी है। इस कथा में कान्हपा का उड़कर जाना अवैज्ञानिक है। पर इससे यह जरूर प्रमाणित हो जाता है कि गोरखनाथ को कान्हपा से ही गुरु के महाज्ञान से भटकने का पता चला था। गोरख बानी और कथा से लगता है कि मछेन्द्रनाथ ने अपना अलग मार्ग चुन लिया था और अज्ञातवास में चले गये थे, जिसका पता गोरखनाथ को भी नहीं था। इसी स्थिति का चित्रण उनके एक पद में इस तरह मिलता है-

मेरा गुरु तीनि छंद गावै
ना जाणौ गुरु कहां गैला मुझ नींदडी न आवै। (नाथ संप्रदाय)

गोरख कहते हैं, 'मेरा गुरु तीन छन्द गाता है 'पर अब न जाने गुरु कहाँ चले गये हैं, उनके बिना मुझे नींद नहीं आती।' आगे गुरुजी को सम्बोधित कर कहते हैं-

गुरुजी ऐसा करम न कीजैं, ताथैं अमीं महारस छीजै।
दिवसै बाघणि मन मोहै राति सरोवर सोषै।
जाणि बूझि रे मूरिष लोया घरि घरि बाघणी पोषै।।
नदी तोरै बिरण नारी संगै पुराण अलप जीवन की आसा।
मनथैं उपज मेर षिसि पड़ई ताथैं कंध बिनासा।। (नाथ संप्रदाय)

गोरखनाथ स्त्री विरोधी थे, वे योग साधना में स्त्री को बाधक मानते थे। इसलिये जब उन्होंने यह सुना कि उनके गुरु सिंहल की पभिनियों के बीच रमण कर रहे हैं, तो यह उन्हें महाज्ञान के विरुद्ध लगा। इस पद में वह गुरु जी को समझा रहे हैं - गुरु जी ऐसा कर्म न कीजिए, जिससे अमृत महारस क्षीण हो जाय। दिन में स्त्री मन को मोहती है और रात्रि में पुरुष के अन्दर के सरोवर को सोख लेती है। जैसे नदी किनारे के पेड़ की लम्बी आयु नहीं होती, उसी तरह स्त्री के साथ रहने वाले पुरुष का जीवन भी अल्पजीवी होता है। हे गुरुदेव, आप जानबूझ कर मूर्ख क्यों बन रहे हैं? '

मछेंद्रनाथ के बारे में गोरखनाथ का एक अन्य महत्वपूर्ण पद यह है :

गुरु षोजौ गुरदेव गुरु षोजौ, बदंत गोरा ऐसा।
मुक्ते हौइ तुम्हें बंधनि पड़िया, ये जोग है कैसा।।
चांम ही चांम धसंता गुरदेव दिन दिन छीजै काया।
होठ कंठ तालुका सोषी, काढ़ि मिजालू षाया।।
दीपक जोति पतंग गुरदेव, ऐसी भग की छाया।
बूढ़े होइ तुम्हें राज कमाया नां तजी मोह माया।।
बदंत गोरानाथ सुनहू मछंदर तुम्हें ईश्वर के पूता।
ब्रह्म झरंता जे नर राषै, सो बोलो अवधूता।। (नाथ संप्रदाय)

इस पद में गोरखनाथ का कथन है - हे गुरुदेव वास्तविक गुरु की खोज कीजिए। मुक्त होकर भी आप बन्धन में पड़ गये। इससे आपका शरीर क्षीण हो रहा है। होठ, कण्ठ, तालू सब सूख गये हैं। इसने मज्जा तक खा लिया है। जैसे दीपक की ज्योति से आकर्षित होकर पंतगा जल जाता है, वैसे ही भग (योनि) है, जिसके आकर्षण ने आपको नष्ट कर दिया है। हे मछंदर, गोरखनाथ का वचन सुनो - तुम तो ईश्वर के पुत्र हो। जो ब्रह्म की रक्षा करता है, वही अवधूत हैं।

यहां ब्रह्म स्त्री से दूर रहने की स्थिति को कहा गया है और उस स्थिति की रक्षा करने वाले को अवधूत कहा गया है। इस सम्बन्ध में स्वयं मछेंद्रनाथ का क्या कथन है, इसकी हमें कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रन्थ 'नाथ-सम्प्रदाय' में मछेंद्रनाथ का पूरी तरह सिर से पांव तक ब्राह्मणीकरण कर दिया है। उन्होंने उन्हें अवैज्ञानिक मिथकों में तलाश करने का काम किया है और आध्यात्मिक माया-जाल में उलझा कर उन्हें अद्वैत ज्ञान का लग्गू-भग्गू बना दिया है। उन्होंने मछेंद्रनाथ के नाम से लिखित संस्कृत ग्रंथों के हवाले से उन्हें कौल साधक सिद्ध किया है। नाथ संप्रदाय के संतों के बारे में ये बातें सही प्रतीत नहीं होती हैं।

वास्तव में, किसी भी सिद्ध और नाथ का संस्कृत से कुछ लेना-देना है यह संदिग्ध है सभी चौरासी सिद्ध प्राकृत (आम जनभाषा) भाषाओं के कवि थे और सभी सिद्ध कवि वर्णव्यवस्था, वेदशास्त्र, ब्रह्म, ईश्वर आदि ब्राह्मणवादी ब्रह्मजाल के आलोचक थे इसलिये, यह कहना कि मछेंद्रनाथ ने संस्कृत में कोई ग्रन्थ लिखा था बहुत सही नहीं लगता है। यह शोध का विषय है जिसके बाद ही हम किसी स्पष्ट निर्णय पर पहुँच सकते हैं।

नाथ पंथ में जालन्धर पाद के शिष्य मछेंद्रनाथ का महत्वपूर्ण स्थान है। पर, उनका व्यक्तित्व और कृतित्व दन्तकथाओं और ब्राह्मणी गल्पों में दबा पड़ा है। इन कथाओं और गल्पों का वैज्ञानिक और ऐतिहासिक विश्लेषण करने का प्रयास नहीं किया गया। परिणामतः, मछेंद्रनाथ जैसे महासंत के बारे में बहुत ही कम प्रामाणिक जानकारी मिलती है।

10.3 नाथ साहित्य की वैचारिकी

वैदिक धारा के पंडितों ने वैदिक धर्म के विरोध में नया समतामूलक विचार देने वाले सन्तों और सिद्धों का मूलोच्छेद करके अस्तित्व मिटाने का भरपूर प्रयास किया। लेकिन जब ऐसा संभव न हुआ, तो उनकी खूब निंदा करके जनता में उनको बदनाम करने का काम किया। इससे भी काम न बना और जनता में उनके प्रति श्रद्धा बढ़ती ही गयी, तो वे उनके शिष्य बनकर उनके पंथ में घुस गये और वहां रहकर उनके बारे में मनगढ़न्त कहानियां गढ़कर प्रचारित कर दी कि वे सहज संत न रहकर चमत्कारी पुरुष बन गये। मछेन्द्रनाथ और गोरखनाथ दोनों महासन्तों के साथ ब्राह्मणों ने यही किया। मछेंद्रनाथ को मछली के पेट

से और गोरखनाथ को गोबर से पैदा हुआ दिखा कर उनका भरपूर विकृतीकरण किया गया। इस विकृतीकरण के पीछे नाथ साहित्य की वैचारिकी को ध्वस्त करने की मंशा रही है। लेकिन आम जनता में इनकी छवि इस सबके बाद थी पूरी तरह धूमिल नहीं हो पायी यह हमें नाथपंथी संतों के पदों की जनता के बीच लोकप्रियता से ज्ञात होता है। नाथों के ढेरों पद दूसरों के नाम से जनप्रिय हैं। नाथों की वैचारिकी जानने के लिए इसके लिए उदाहरण के बतौर लोकभाषा में प्रचलित कुछ पदों को देखा जा सकता है जैसे

गुरु की जै महिमा निगुरा न रहिला।
गुरु बिनं ग्यांन न पाईला रे भाईला।।

(नाथ संप्रदाय पृष्ठ 199, हजारी प्रसाद द्विवेदी)

इस पद में गुरु के महत्त्व को इंगित किया गया है। ज्ञान की महत्ता वर्णवादी सत्ता के खिलाफ़ कितनी है और इसके लिए सही गुरु की कितनी आवश्यकता है इस बात को इस पद से समझा जा सकता है। यही नहीं गुरु और शिष्य में नाथ पंथी बहुत अन्तर नहीं मानते उनके लेखे अन्तर बस इतना ही है कि गुरु के पास अधिक तत्व ज्ञान होता है और शिष्य के पास उससे कम। वे यह भी मानते हैं कि अधिक तत्व ज्ञान वाले से कम तत्व ज्ञान वाले को सदा ज्ञान ग्रहण करना चाहिए। लेकिन ज्ञान प्राप्ति के बाद गुरु के पीछे-पीछे भटकना या उसका अनुसरण करना ठीक नहीं। शिष्य चाहे तो अपनी मर्जी से गुरु के साथ रह सकता है और उसे अच्छा न लगे तो अकेले ही रह सकता है। यथा

अधिक तत्त ते गुरु बोलिये हींण तत्त तें चेला।
मन मांने तो संगि रमौ नहीं तो रमौ अकेला।।

(नाथ संप्रदाय पृष्ठ 199, हजारी प्रसाद द्विवेदी)

भक्ति युगीन संतों में जो सम्पूर्ण तीर्थ के घट के भीतर बसने की बात बार-बार आई है यह नाथों के यहाँ से ही आई है। उनका मानना है कि योगी के लिए मन व चित्त की शुद्धता की आवश्यकता है न कि उसे रात-दिन चलते रहने और नाना तीर्थों में भटकते फिरने की जरूरत है। पद इस प्रकार हैं।

पंथि चलै चलि पवनां तूटै नाद बिंद अरू आई।
घट ही भीतरि अठसठ तीर्थ कहाँ भ्रमै रे भाई।।

अवधू मन चंगा तो कठौती ही गंगा।
बांध्या मेल्हा तो जगत्र चेला।।

हसिबा षेलिबा रहिबा रंग। कांम क्रोध न करिबा संग।।
हसिबा षेलिबा गाइवा गीत। दिढ़ करि राषि आपना चीत।।
हसिबा षेलिबा धरिबा ध्यांन। अहनिसि कथिवा ब्रह्म गियांन।।
हसै षेलै न करै मन भंग। ते निहचल सदा नाथ के संग।।

(नाथ संप्रदाय पृष्ठ 200, हजारी प्रसाद द्विवेदी)

योगी वैदिक महर्षियों की तरह नहीं है न ही वे गुफाओं-कन्दराओं में स्वान्तः सुखाय ज्ञान प्राप्त करने वाले हैं बल्कि इन सबके विपरीत वे जीवन से साक्षात्कार करने वाले और जीवन के दुख दर्दों से रू-ब-रू होने वाले हैं। उनका सिद्धांत बहुजन हिताय का है और यह उनके यहाँ बौद्ध परंपरा से आया है। उनका कहना है ।

सहज सील का धरै सरीर।
सो गिरती गंगा का नीर।।

(नाथ संप्रदाय पृष्ठ 201, हजारी प्रसाद द्विवेदी)

कुल मिलाकर नाथ पंथी वैचारिकी में वाक्संयम, शरीरी शुचिता, ज्ञान के प्रति निष्ठा, थोथे आदर्शों आंडबरों का निषेध अजीवन के प्रति सम्पूर्ण आस्था है। इस साहित्य ने बाद के जनआंदोलनों को काफी प्रेरणा दी हैं।

10.4 राजनीतिक परिवेश एवं धार्मिक सांस्कृतिक स्थितियाँ

यह ऐसा समय है जब जनता पर विदेशी आक्रान्ताओं के साथ-साथ युद्ध-कामी देशी राजाओं के अत्याचारों का क्रम भी लगातार बढ़ता जा रहा था। वे आपस में लगातार लड़ते रहते थे और उसका प्रभाव आम जनता पर पड़ता था राजाओं के लड़ने से दो तरह के सोचने वाले वर्गों का उदय हुआ। एक ऐसा था जो साहस और वीरता के साथ लड़ते हुए जीना चाहता था उसका मन इसी में रमता था। दूसरा वर्ग ऐसा था जो इस तरह की विनाश लीला देखकर संसारेतर बातें सोचने पर बाध्य था।

तरह-तरह के धार्मिक संप्रदायों का चलन था और इनमें मेल-जोल व संघर्ष बढ़ रहा था जाति-पांति के बंधन कड़े होते जा रहे थे। उच्च वर्ण भोग में लगा था और निर्धन लोग मानो श्रम करने के लिए ही पैदा हुए थे। नारी को भोग्या बना दिया गया था। आम आदमी के लिए कोई शिक्षा व्यवस्था नहीं थी। अंधविश्वास जादू-टोना लोगों को घेर रहे थे। सामाजिक परिस्थिति की इस विषमता में जीने वाली जनता भाव-विचार के स्तर पर प्यासी थी जिसे नाथों ने बुझाया।

अराजकता गृह कलह, विद्रोह, आक्रमण और युद्ध के इस वातावरण में यदि एक कवि आध्यात्मिक जीवन का राग अलापता था तो दूसरा मरते-मरते भी सांसारिक सुख, जीवन रस भोग लेना चाहता था। यही इस काल की राजनैतिक परिस्थितियों की एक अजब देन है कि एक ओर स्त्री भोग, हठ योग से लेकर आध्यात्मिक पलायन और उपदेशों का साहित्य लिखा गया तो दूसरी ओर ईश्वर की लोक-कल्याणकारी सत्ता में विश्वास करने, लड़ते-लड़ते जीने और संसार को सरस बनाने की भावना भी साहित्य रचना के मूल में निहित हैं। नाथों का साहित्य जनभावना को लेकर आगे बढ़ा यह जरूर है कि यह साहित्य आध्यात्मिकता के कवच में है। क्योंकि उस दौर में खालिस जनभावना व्यक्त करना असंभव रहा। मछेंद्रनाथ नाथों में महत्वपूर्ण हैं वे मछेंद्रनाथ राजा देवपाल के समकालीन माने जाते हैं, जिनका समय 809 से 849 ई. है। यह वह समय था, जब अरब या इस्लाम की शक्ति ने भारत की धरती पर पैर रखना शुरू कर दिया था। यद्यपि अभी मुस्लिम शासन को स्थापित होने में देर थी, पर 711 ई. में मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध पर विजय प्राप्त कर ली थी। दूसरी ओर, बुखारा में 709 ई. में ही इस्लाम बौद्धधर्म को नष्ट कर चुका था। भारत में पालवंश स्थापित हो चुका था। देवपाल उसी वंश के थे। उनके समय तक इस्लाम दस्तक दे चुका था। तो भी, जैसा कि राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है, 'मगध-भूमि बौद्धधर्म का केंद्र थी, जहां बड़े-बड़े बौद्ध विद्या केंद्र थे।' इस्लाम-परस्तों के लिये जैसे ब्राह्मण धर्म वैसे ही बौद्धधर्म काफिरों का धर्म था। इसलिये मन्दिरों के साथ, बौद्ध विहार और मठ भी मुस्लिम हमलावारों के निशाने पर थे। यद्यपि गजनी के विध्वंसक हमले अभी डेढ़ सौ साल बाद होने थे, पर देश की राजनैतिक परिस्थितियाँ बदलने लगी थीं। यद्यपि, सामाजिक विकास अत्यन्त धीमा था, परन्तु ब्राह्मणवाद और वर्णव्यवस्था के खिलाफ जनता में विद्रोह बढ़ रहा था। इस्लाम इसे नयी ताकद दे रहा था। बौद्धधर्म के महायान का विकास आठवीं शताब्दी में ही वज्रयान में हो चुका था, जिसके प्रथम प्रणेता और आचार्य सरहपाद थे। आठवीं शताब्दी में ही शंकराचार्य का अद्वैतवाद और मायावाद भी स्थापित हो चुका था। अब उनमें कुछ और नये पंथों का विकास हो रहा था। सामंतवादी शक्तियां जनता के विद्रोह

को धर्म की अफीम से शान्त करने के लिये तरह-तरह से प्रयास कर रही थीं। ब्राह्मणधर्म (वैष्णव-धर्म) का पतन पहले ही हो चुका था। अब उसे नये सिरे से खड़ा होने के लिये नये आधार की जरूरत थी। अतः सामंती ताकतों और ब्राह्मणों का गठजोड़ धार्मिक क्षेत्र में एक कट्टर निरंकुश शक्ति के रूप में उभर रही थी। दूसरी ओर इस्लाम से रक्षा के लिये सिद्धों ने भी अनीश्वरवाद से ईश्वरवाद का रास्ता अपना लिया था और बुद्ध वचनों की अलौकिक व्याख्याएं करनी शुरू कर दी थीं। यदि आठवीं शताब्दी की परिस्थितियों ने वज्रयान का विकास किया था, तो नौवीं शताब्दी की परिस्थितियों ने वज्रयान की धारा को नाथपंथ में बदल दिया था। सिद्ध शून्यवादी और अनीश्वरवादी थे, जबकि नाथों ने शून्य को परमपद और अनीश्वरवाद को ईश्वरवाद का रूप दे दिया था। इस नये पंथ के प्रवर्तक जालन्धरपाद थे, जिन्हें आदिनाथ भी कहा जाता है।

जालन्धरपाद के शिष्य मछेंद्रनाथ नाथपंथ में बड़े पहुंचे हुए सिद्ध और आचार्य थे। उनका व्यक्तित्व भव्य और आकर्षक था। जो भी उन्हें देखता, मंत्र मुग्ध हो जाता था। उनके सिद्ध और चमत्कारी पुरुष होने की जन साधारण में बहुत-सी कहानियां प्रचलित हैं। ये कहानियां जनसाधारण में उनके व्यापक प्रभाव के प्रमाण हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये कहानियां बहुत बाद में बनीं, जब उनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक हो गयी थी और जनता उन्हें अपना मुक्तिदाता मानने लग गयी थी। तब, कहानीकारों ने उनके वास्तविक स्वरूप पर पर्दा डालने के लिये कहानियां गढ़ी और आगे चलकर वे कहानियां ही उनके व्यक्तित्व का परिचय बन गयीं। पर, इससे उनका विद्रोही व्यक्तित्व दब गया। अतः उनके वास्तविक स्वरूप को सामने लाने के लिये एक-दो कहानियों का विश्लेषण करना जरूरी है।

एक कहानी इस प्रकार है कि शिव जी ने ही अपना वेश ज्यों का त्यों मछेंद्रनाथ को दे दिया था। दूसरी कहानी यह है कि शिव का वेश पाने के लिये मछेंद्रनाथ ने कठोर तपस्या की थी, जिससे प्रसन्न होकर शिव ने उन्हें अपना वेश दिया था। इस कहानी का सिर्फ इतना ही अर्थ है कि मछेंद्र का व्यक्तित्व शिव के समान था। वह शिव जैसे वेश में रहते थे, जैसे शांति-स्वरूप, तुषार-धवल शरीर, निर्वैर भाव, विशाल नेत्र, सिर पर जटा-जूट, और कानों में बड़े-बड़े कुण्डल। उन्हें आता देखकर जनसाधारण को यही आभास होता था कि साक्षात शिव ही चले आ रहे हैं।

एक कथा का उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं कि कार्तिकेय ने 'कुलागम शास्त्र' को चुराकर समुद्र में फेंक दिया था। तब, उस शास्त्र का उद्धार करने के लिये भैरव अर्थात् शिव ने मछेंद्रनाथ का अवतार धारण कर समुद्र में घुसकर उस शास्त्र का भक्षण करने वाले मत्स्य का उदर चीर कर शास्त्र का उद्धार किया था।

इस कथा के वास्तविक अर्थ को समझने के लिये हमें 'कुलागम' को समझना होगा। मछेंद्रनाथ को कौलाचार का सिद्ध पुरुष माना जाता है और यह भी कि उनका संबंध योगिनी कौल मार्ग से था। 'कुल' से 'कौल' शब्द बना है। जो कुल परंपरा में है, वही कौल है। 'आगम' का अर्थ है, अनादि परंपरा से आया हुआ ज्ञान अथवा वह ज्ञान, जो शिव से प्राप्त हुआ है। इसी लिये शैवग्रंथों को 'आगम' और वैदिक ग्रंथों को 'निगम' कहा जाता है। दूसरे शब्दों में परंपरा से प्राप्त ज्ञान 'आगम' तथा वेदों से प्राप्त ज्ञान 'निगम' माना जाता है। 'कुलागम' ग्रन्थ की रचना मछेंद्रनाथ ने की थी, जिसमें कौलाचार का निदर्शन है। कौलाचार का अर्थ है, शैवधर्म अथवा आगम-पंथ जाति वर्ण विहीन होने के कारण उसके द्वार सभी के लिये खुले थे, इसलिये, वह वैदिक अथवा ब्राह्मणधर्म के लिये घातक था। कार्तिकेय ने 'कुलागम' ग्रंथ को नष्ट करने की कोशिश इसीलिये की थी, जिसे मछेंद्रनाथ ने विफल कर दिया था। जब ग्रन्थ नष्ट नहीं हो सका और मछेंद्रनाथ के आगे ब्राह्मणों का

कोई वश नहीं चला, तो उन्होंने शिव द्वारा मछेंद्रनाथ का अवतार लेकर समुद्र में घुसकर मछली के पेट से 'कुलागम' को बचाने की कहानी गढ़ी।

कहा जाता है कि नेपाल में मत्स्येन्द्री नामक जाति के लोग मछेंद्रनाथ की पूजा करते थे। पर इसी कारण वहां के तत्कालीन राजा और राजपुरुष उन लोगों पर अत्याचार करते थे। उन्हें अत्याचारों से मुक्त कराने के लिये वहां गुरु गोरखनाथ को जाना पड़ा। कहते हैं कि गोरखनाथ ने वहां जाकर मिट्टी के पुतले बनाये, जो सैनिक बन गये, जिन्होंने मछेंद्रदेव पर चढ़ाई की और इस प्रकार 420 संवत में वहां गोरख राज्य स्थापित हुआ।

इससे प्रतीत होता है कि मछेंद्रनाथ का नेपाल में व्यापक प्रभाव था और गोरखनाथ ने उस प्रभाव को राजसत्ता के विरुद्ध मोड़ दिया था।

मछेंद्रनाथ विषयक सर्वाधिक कहानियां उनका विकृतीकरण और वीभत्सीकरण करती हैं। उनमें से एक कहानी इस प्रकार है - ''कवि नारायण मत्स्येन्द्रनाथ के रूप में एक भृगुवंशीय ब्राह्मण के घर अवतरित हुए थे। पर गंडन्त योग में पैदा होने के कारण उस ब्राह्मण ने उन्हें समुद्र में फेंक दिया। एक मछली उन्हें बारह वर्ष तक निगले रही और वे उसके पेट में ही बढ़ते रहे। शिव द्वारा पार्वती को सुनाई जाने वाली अमर कथा को मछली के पेट से इस बालक ने सुना। वह बालक बाद में शिवजी द्वारा अनुगृहीत और उद्भूत होकर महासिक हुआ। इस बालक ने अपनी अपूर्व सिद्धि के बल से हनुमान, वीर वैताल, वीरभद्र, भद्रकाली, और चामुण्डा देवी को पराजित किया। परन्तु दो बार यहाँ गृहस्थी के चक्र में फँस गये। प्रथम बार तो प्रयागराज के राजा के मरने से शोकाकुल जनसमूह को देखकर गोरखनाथ ने ही उनसे राजा के मृत शरीर में प्रवेश करके लोगों को सुखी करने का अनुरोध किया और मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने मृत शरीर की बारह वर्ष तक रक्षा करने की अवधि देकर राजा के शरीर में प्रवेश किया। बारह वर्ष तक वे सानन्द गृहस्थ जीवन व्यतीत करते रहे। दूसरी बार त्रियादेश (सिंहल देश) की रानी ने अपने रुग्ण-क्षीण पति से असन्तुष्ट होकर अन्य योग पुरुष की कामना करती हुई हनुमान जी की आराधना की। हनुमान जी ने स्वयं गृहस्थी के बन्धन में बंधना अस्वीकार किया, पर मत्स्येन्द्रनाथ को ले आ दिया। रानियों के राज्य में योगियों का आना निषेध कर दिया था। किसी तरह गोरखनाथ ने बालक वेश बना राज्य में प्रवेश किया और अपने गुरु का उद्धार किया।''

(नाथ संप्रदाय - ह.प्र. द्विवेदी, पृष्ठ 48)

इस कहानी में योगी मछेंद्रनाथ को भोगी बनाने का प्रयास किया गया है। इसमें हनुमान को योगी - ब्रह्मचारी दिखाया गया है, जबकि ऐतिहासिक रूप से उनका कोई अस्तित्व ही नहीं है। मछेंद्रनाथ को विलासी दिखाते हुए उनकी उत्पत्ति की कहानी उसी तरह गढ़ी गयी है, जिस तरह कबीर और रैदास के जन्म की गढ़ी गयी है। कबीर रैदास की तरह मछेंद्रनाथ को भी यह कहानी पूर्व जन्म का ब्राह्मण बताती है। जैसे कबीर को अवैध सन्तान के कारण फेंक दिया गया था, जिसे बाद में एक मुसलमान जुलाहा ने उठाकर पाला था। वैसे ही इस कहानी में ब्राह्मण पिता द्वारा मत्स्येन्द्रनाथ को गंडन्त योग में पैदा होने के कारण समुद्र में फेंक दिया दिखाया है, जिसे एक मछली अपने पेट में पालती है। क्या इस गल्प पर विश्वास किया जा सकता है? दरअसल, ब्राह्मण यह स्वीकार करना नहीं चाहते कि निम्न जाति में जन्मा कोई व्यक्ति शंकराचार्य से भी बड़ा सिद्ध, तेजस्वी और सुविख्यात हो सकता है। इसलिये उन्होंने अपने मिथ्या अहं को सन्तुष्ट करने के लिये मछेंद्रनाथ को ब्राह्मण बनाने की कहानी गढ़ी। रानियों के साथ विलास की कहानी भी मछेंद्रनाथ का चरित्र हनन करने की कोशिश है।

स्त्री देश में मछेंद्रनाथ के जाने का उल्लेख गोरखनाथ की बानी में भी मिलता है और यह भी पता चलता है कि वे वहां स्त्रियों के साथ रमण कर रहे हैं। किंतु इस कथा से भ्रमित

होने की आवश्यकता नहीं है। प्रथम तो यह पता लगाना मुश्किल है कि स्त्रीदेश कौन सा है? ऐसे किसी भी देश की कल्पना नहीं की जा सकती, जहां सिर्फ स्त्रियां ही रहती हों, पुरुष नहीं। पर यदि स्त्रीदेश से मतलब उस देश से लगाया जाय, जहां स्त्रियों की राजसत्ता थी, तो ऐसे कई देश खोजे जा सकते है। उनमें से किस देश में मछेंद्रनाथ गये थे, यह जानने का क्या आधार है? स्पष्ट है कि यह मनगढन्त कथा है, जो मछेंद्रनाथ का वीभत्सीकरण करने के उद्देश्य से गढ़ी है।

गोरखनाथ की बानी से यह स्पष्ट होता है (और उपर्युक्त कहानी से भी) कि मछेंद्रनाथ ने गृहस्थ जीवन स्वीकार कर लिया था। गोरखनाथ ने अपने गुरु के गृहस्थ जीवन की निंदा करते हुए स्त्री-संसर्ग को योग-साधना में बाधक माना है। उन्होंने उन्हें स्त्रियों से दूर रहने का उपदेश दिया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि योग साधना को लेकर मछेंद्रनाथ और गोरखनाथ की मान्यताएं एक नहीं थीं। जहां गोरखनाथ स्त्रियों के संसर्ग को पाप की संज्ञा देते थे, वहां मछेंद्रनाथ के विचारों में परिवर्तन आया था और वे इस मत के हो गये थे कि गृहस्थ जीवन में भी योग-साधना भली भांति की जा सकती है। उनकी दृष्टि में योग का अर्थ गृहस्थ जीवन का त्याग करना नहीं था, बल्कि काम-वासनाओं, लोभ, मोह और ईर्ष्या-द्वेष जैसे मनोविकारों पर नियन्त्रण करना था।

मछेंद्रनाथ के विचार क्या थे? यह हमें 'गोरखबानी' में संग्रहीत 'मछींद्र गोरा बोध' से पता चलता है। इसमें गोरखनाथ ने प्रश्न किया है और मछेंद्रनाथ ने उसका उत्तर दिया है। गोरखनाथ पूछते हैं- 'आरम्भ में चेला कैसे रहे?' मछेंद्रनाथ उत्तर देते हैं - 'अवधू (यानि अवधूत) रहे, काम, क्रोध, तृष्णा और संसार की माया त्याग दे।'

अवधू का अर्थ है, बोधपूर्ण व्यक्ति, सिद्ध। नाथपंथ के सिद्ध योगी अवधू कहे जाते हैं। इसका एक अर्थ यह भी है कि वह बंधा नहीं है। गोरख पूछते हैं- इसका एक अर्थ यह भी है कि बंधा नहीं है। गोरख पूछते हैं - 'स्वामी कौन देषिवा कौन विचारिबा कौंन ले धरिबा सारं।' किसे देखें, किसे विचारें और किसे धारण करें? मछेंद्रनाथ बताते हैं - 'अवधू आपा देषिबा अनंत विचारिबा, तत ले धारिबा सारं।' अवधू अपने आप को देखे, अनन्त विचारे और सार तत्व को ग्रहण करे।

गोरख पूछते है - 'स्वामी मनका कौंन रूप, पवन का कौन आकार।' हे स्वामी, मन का रूप क्या है और पवन का आकार क्या है? मछींद्रनाथ जवाब देते हैं - 'अवधू मन का सुंनि रूप, पवन का निरालंभ आकार।' अवधू, मन का रूप सुन्न (अर्थात् शून्य) है और पवन का आकार निरालम्भ (अर्थात् कोई आलम्भ नहीं) है। यहाँ मछेंद्रनाथ ने बुद्ध कुल (बौद्ध परंपरा) को सुरक्षित रखा है। यही कुलागम और कौलाचार है। बौद्धधर्म में शून्यवाद नागार्जुन की देन है। शून्यवाद को सिद्धों और नाथों ने ही नहीं, आगे चलकर कबीर और रैदास आदि निर्गुण संतों ने भी अंपनाया है। कबीर ने आतमराम को परमपद कहा है। यही शून्य और निर्वाण है। अपने आप को देखने की बात कहकर मछेंद्रनाथ ने भी यहाँ बुद्ध के निर्वाण को ही स्वीकार किया है।

आगे और भी ज्यादा स्पष्ट रूप से मछेंद्रनाथ ने शून्य को प्रस्तुत किया है। गोरखनाथ प्रश्न करते हैं -

स्वामीं कौंन सुंनि उतपनां आइ। कौंण सुंनि सतगुरु बुझाइ।
कौन सुंनि मैं रह्या समाइ। ए तत्वा गुरु कहौ समुझाइ।।

10.7 सारांश

वैचारिक स्तर पर सिद्धों और नाथों में काफी समानताएँ हैं। दोनों ने लोक भाषा में काव्य-रचना की है। दोनों शून्यवादी है। दोनों का जोर सहज अथवा नैसर्गिक जीवन पर था। दोनों ने ब्राह्मणवाद और वर्ण व्यवस्था का खण्डन किया है। दोनों ने मन की पवित्रता और स्थिरता की बात की है। योग ध्यान और समाधि दोनों के यहां मिलती है। दोनों के बीच फिर भी एक बड़ा अंतर है। वह अंतर है धर्म को लेकर। नाथों ने बुद्ध की जगह शिव को अपना आराध्य बना लिया था। एक प्रकार से वे ईश्वरवादी हो गये थे। यह परिवर्तन जालन्धावाद के समय से शुरू हुआ। इसके लिये उनके समय की राजनैतिक परिस्थितियां जिम्मेदार थीं। मुसलमानों के हमलों से स्वयं को बचाने का उनके समक्ष यही एकमात्र उपाय था कि वे शैव होकर ईश्वरवादी हो जाते, क्योंकि अनीश्वरवादी, नास्तिक और बुद्ध-आराधक के रूप में मुस्लिम शासकों के इस्लामी अभियान में वे आसानी से शिकार हो सकते थे। इसलिये उन्होंने अपना वेश भी शिव जैसा ही बनाया और शिव की उपासना की शिक्षा देने लगे। पर उल्लेखनीय यह है कि उन्होंने शिव की व्याख्या उसी अर्थ में कही है, जिस अर्थ में बुद्ध ने बुद्धत्व की व्याख्या की है। मछेंद्रनाथ कहते हैं- शून्य मन्दिर है, मन देवता है (अवधू सुनि सो मंदिर मन सो देव), जैसे पुष्प मध्य गंध रहती है, वैसे ही देह मध्य ईश्वर रहता है (पहपु मधे जथा बासं, देही मधे तथा देवता), शिव अन्तर में वास करता है (उरधै बसै सीव), जो ज्योति है, वहीं मूर्ति है, उसके रूप-अरूप से मन को अलग रखना है, यही मछेद्रनाथ का विचार है - 'जोति से मूरति ज्वाला। रूप अरूप मन उनमनि रहै, ऐसा बिचार मछिंद्र कहै। '

'मछींद्र-गोरा-बोध' के आधार पर यद्यपि हम यह नहीं कह सकते कि यही मछेंद्रनाथ की मूल शिक्षा और यही मूल भाषा है। पर गोरखनाथ ने जिस तरह से अपने शब्दों में गुरु मछेंद्रनाथ से प्रश्न किये हैं और गुरु के अन्तरों को जिस तरह से व्यक्त किया है, उससे हम इस निष्कर्ष पर जरूर पहुंच सकते हैं कि वही उस ज्ञान के उपदेश हो सकते हैं।

इस इकाई में हमने नाथ साहित्य के बारे में विस्तार से चर्चा की। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपके मन में यह साफ हो गया होगा कि नाथ साहित्य उस दौर का बहुत महत्वपूर्ण और क्रांतिकारी साहित्य है। इस साहित्य ने आम आदमी को अपना केन्द्र बनाया और उसके दुख-दर्द को साहित्य में पुरजोर तरीके से रखा। यह साहित्य भविष्य के सभी जनवादी क्रांतिकारी साहित्य आंदोलनों की रीढ़ है। दलित साहित्य का आधार निर्मित करने में इसने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसे पढ़े बग़ैर दलित साहित्य और उसकी प्रकृति को ठीक से नहीं जाना जा सकता।

10.8 शब्दावली

कल्याण : बसवेश्वर का कार्यस्थलः अब उसका नाम बसवकल्याण हो गया है।

अनुभव मंडप : बसवेश्वर द्वारा स्थापित विचार मंच

शरण : संत

वचन साहित्य : शरण-संतों द्वारा रचित पद्य-साहित्य

सुबोध : जानने योग्य

जात्यातीत : जाति रहित

जंगम : (1) (संज्ञा) संत (2) (क्रिया) चलने वाला

प्रवर्तन करना : सुधार, परिवर्तन लाना

वर्णाश्रम : चार वर्ण के आधार पर बना धर्म

अद्वैत : दो नहीं एक

निरंजन : माया रहित

अवस्था : स्थिति

पंचभूत : पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश

संहिता : कानून

कुत्सित : अधम

उपनयन : जनेऊधारण आचरण

अग्रहार : ब्राह्मणों की बस्ती

कूडलसंगम : बसवेश्वर का आराध्य देव

कायक : क्रिया

खंड के प्रश्न

1) सिद्ध संप्रदाय के उदय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विचार करें।

2) सिद्धों की सामाजिक चेतना पर प्रकाश डालें।

3) जाति-व्यवस्था को तोड़ने के प्रयास के संदर्भ में सिद्धों की क्या भूमिका रही? अवजातीकरण की अवधारणा का विवेचन करें।

4) सिद्ध सहज जीवन के आग्रही थे, इस कथन की मीमांसा करें।

5) सिद्ध संप्रदाय की आधारभूत विशेषताओं का निरूपण करें।

6) सिद्ध कवि सरहपा के व्यक्तित्व का विश्लेषण करें।

7) महानुभाव पंथ का उदय और विकास कैसे हुआ यह स्पष्ट करें?

8) महानुभाव पंथ का दर्शन और आचरण धर्म को स्पष्ट करें।

9) महानुभाव पंथ के मुख्य सात ग्रंथों का परिचय दीजिए।

10) महानुभाव पंथ के चरित्र ग्रंथों पर विचार करें।

11) महानुभाव पंथ का दर्शन दलित साहित्य की प्रेरणा के रूप में ले सकते हैं। चर्चा करें।

12) महानुभाव पंथ के ग्रंथ के माध्यम से दलित अनुभव व्यक्त हुए हैं क्या? विश्लेषण करें।

13) दलित साहित्य में पीड़ा, विद्रोह और नकार को महत्व है, महानुभाव साहित्य के माध्यम से यह अनुभव होता है क्या?

14) नाथ साहित्य पर बुद्ध दर्शन के प्रभाव पर प्रकाश डालिए।

15) नाथ साहित्य ने दलित साहित्य की आधारभूमि निर्मित करने में जो भूमिका निभाई उसका विवेचन विश्लेषण करें।

16) नाथ साहित्य ने अपने समय में जो हस्तक्षेप किये उनका सविस्तार वर्णन करें।

17) नाथों-सिद्धों के संबंध पर प्रकाश डालिए।

18) नाथ पंथी साहित्य की प्रांसगिकता का मूल्यांकन करें।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

दोहा कोश, (हिंदी छायानुवाद-सहित), राहुल सांकृत्यायन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, द्वितीय संस्करण 1997।

दोहा कोश, (संस्कृत छाया सहित), डॉ. प्रबोध चंद्र बागची, कलकत्ता, 1938

पुरातत्व निबंधावली, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, 1927

सिद्ध साहित्य, धर्मवीर भारती ग्रंथावली खण्ड-9, संपादक-चंद्रकांत बंदिवडेकर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1998

नाथ संप्रदाय, हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, खंड-6, राजकमल प्रकाशन, प्र.सं. अगस्त, 1981 सरहपा, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, प्र.सं.1996

भारतीय साधना की धारा, महामहोपाध्याय डॉ. गोपीनाथ कविराज, अनुवादक पं. हंसकुमार तिवारी, बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद, पटना, प्र.सं. 1984

मिस्टिक टेल्स ऑफ लामा तारानाथ, संपादन और अनुवाद डॉ.बी.एन. दत्ता, कलकत्ता, 1944

पूर्व मध्यकालीन भारत का सामंती समाज और संस्कृति, रामशरण शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1996

अक्कमहादेवी, डॉ. सिद्धय्या पुराणिक, प्रसारांग, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़

बसवेश्वर के वचन, डॉ. एम.बी. कोट्रशेषट्टि, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़

बसव मार्गः एक दशक, डॉ. टी. जी. प्रभाशंकर प्रेमी, बसव समिति बेंगलोर

शरण तत्व विवेचन, प्रो.बी. विरुपाक्षप्पा, बसव समिति बेंगलोर

शरण और संत सामाजिक चिंतन, डॉ. काशीनाथ अंबलगे, अनुभव मंडप प्रकाशन, बसव कल्याण, कर्नाटक

शरणों के चुने हुए वचन, डॉ. टी. जी. प्रभाशंकर प्रेमी, बसव समिति, बेंगलोर

बसवण्णा के वचन, डॉ. अमरेश नुगडोणी, कन्नड विश्वविद्यालय, हंपी

नाथ संप्रदाय - हजारी प्रसाद दिवेद्वी

गौरखबानी - डॉ.पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल

भारतीय दर्शन- पंडित बलदेव उपाध्याय

गोरखनाथ ऐण्ड मिडिएवल हिंदू मिस्टिसिज्म - डॉ. मोहन सिंह

हिन्दी काव्य धारा- राहुल सांकृत्यायन

हिन्दी साहित्य की भूमिका- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

भारतीय साधना की धारा

महानुभावीय मराठी वाडमय, डॉ. य.भू. देशपांडे

महानुभाव दर्शन, प्रा.वि.भि. कोलते

महानुभावों का अचरण धर्म - प्रा. वि.भि.कोलते

श्री चक्रधर चरित्र - प्रा. वि.भि.कोलते

SOH-IGNOU/P.O. 5T/May, 2014

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ISBN : 978-81-266-6666-9